सिद्धयोग

संस्थापक :
योग योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्तों और
शिक्षाओं का
प्रतिपादक मासिक

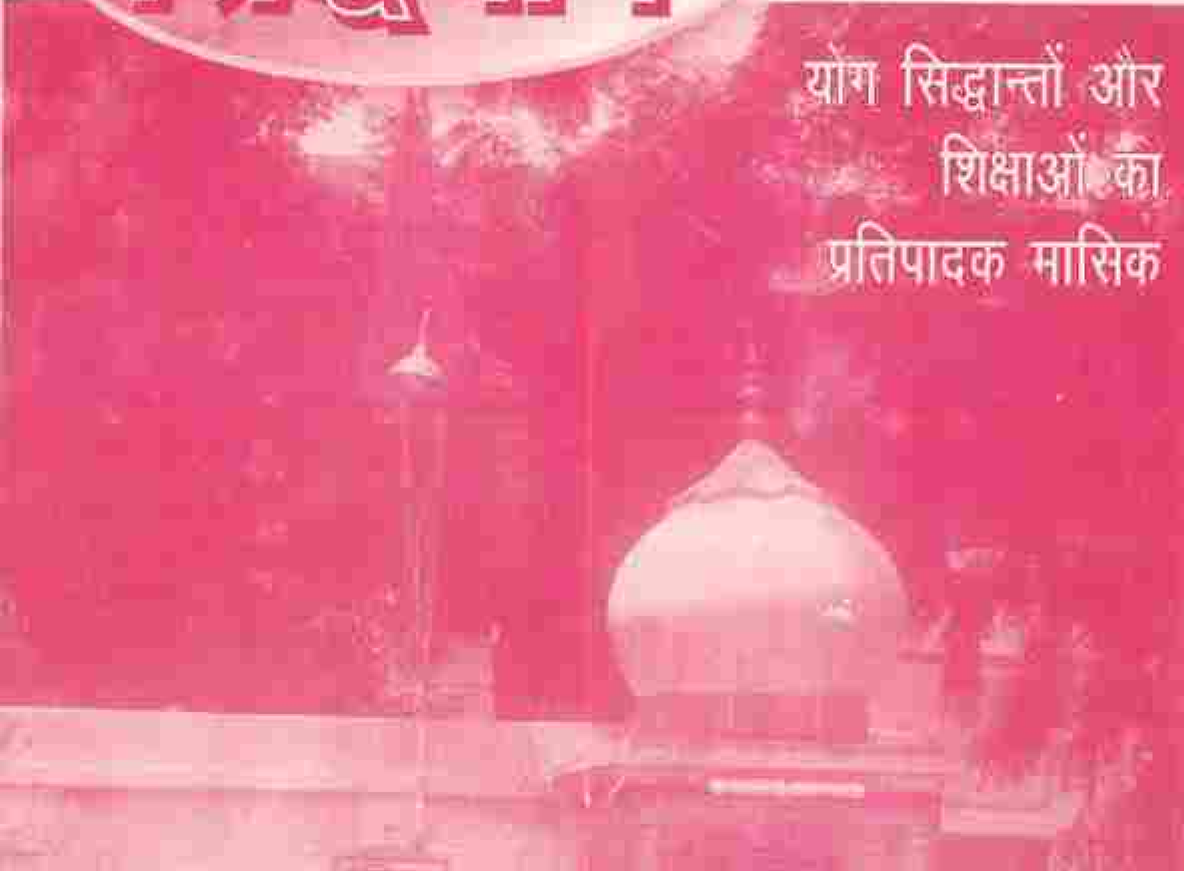

वर्ष : 35
अंक : 7
अक्टूबर 2002

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
संवाई (आगरा) - 283 202 (उ.प्र.)

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
डा० विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

एक प्रति	रु०	9-00
वार्षिक शुल्क	रु०	90-00
द्विवार्षिक	रु०	170-00
आजीवन	रु०	800-00

इस अंक में

- अमृत कण 2
- श्रद्धा एवं सत्संग का वास्तविक स्वरूप (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 7
- गुरु महात्म्य
  कुमारी रजनी शर्मा 12
- संस्कार शक्ति व साधना शक्ति
  कु० रुक्मिणी वर्मा 16
- श्री गुरुदेव की कृपा लीलाएँ
  केशव देव उपाध्याय 23
- सिद्धयोग में एकाग्रतायुक्त ध्यान
  स्वामी मुक्तानंदजी महाराज 28
- मनुष्य-योनि का परम लक्ष्य
  अभिराम शर्मा 30
- श्रीमद्भगवत में ध्यान-विधि
  आचार्य बलरामजी शास्त्री 37

श्री गुरुवे नमः

योगीराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 35
अंक 7

अक्टूबर
2002

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मूख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहम्

नमामीशमीशान निर्वाण रूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्।
निजं निर्गुण निर्विकल्पं निरीहं,
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहम्।।

भावार्थ

हे ईश्वरों के ईश्वर मोक्ष स्वरूप परमेश्वर मैं आपको प्रणाम करता हूं। हे प्रभो! आप सर्वशक्तिमान और व्यापक हैं तथा वेदों में वर्णित ब्रह्म के स्वरूप हैं। आप सदा निज स्वरुप में स्थित रहते हैं और सत्व–रज–तम इन तीनों गुणों से रहित, कल्पना से अतीत एवं इच्छा रहित हैं। चिदाकाश स्वरूप एवं आकाश को ही वस्त्र रूप में धारण करने वाले हे दिगम्बर प्रभो! मैं आपको भजता हूँ।

अमृत कण

ध्यातृध्याने परित्यज्य क्रमाद् ध्येयैकगोचरम्।
निवातदीपवच्चित्तं समाधिः अभिधीयते।।

समाधि का अन्य नाम धर्ममेघ भी है, क्योंकि इसमें धर्म की सैकड़ों धारायें निकलती हैं। समाधि से संचित कर्म नष्ट होते हैं। तथा निर्मल धर्म की वृद्धि होती है।

* * *

द्वैतं मोहाय बोधात्प्राग्जाते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।।
पारमार्थिक द्वैतं द्वैतं भजनहेतवे।
तादृशी यदि भक्तिः स्यात्सा तु मुक्ति शताधिका।।

(बोधसार)

बोध से पहले का द्वैत मोह में डाल सकता है। परन्तु बोध हो जाने पर भक्ति के लिए बुद्धि से कल्पित द्वैत–अद्वैत से भी अधिक सुन्दर होता है। वास्तविक तत्त्व तो अद्वैत ही है, पर भजन के लिए द्वैत है। ऐसा यदि भक्ति है तो वह भक्ति मुक्ति से भी सौ गुणी श्रेष्ठ है।

* * *

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्वमुत्तमम्।
सत्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्त मुत्तमम्।।
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिंग एव च।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति।।

कठोपनिषद अध्याय २/वल्ली ३/७–८

इन्द्रियों से तो मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि उत्तम है, बुद्धि से उसका जीवात्मा ऊँचा है और जीवात्मा से अव्यक्त शक्ति उत्तम है। परन्तु अव्यक्त से भी वह व्यापक और सर्वथा आकार रहित परमपुरुष श्रेष्ठ है, जिसको जानकर जीवात्मा मुक्त हो जाता है और अमृत स्वरूप आनन्दमय ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

□ विशेष लेख

ऋतम्भरा प्रज्ञा

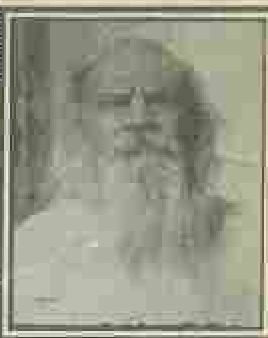

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मैंने योग की महिमा बताते हुये पहले भी तुम्हें समझाया था कि–**यस्मिन ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति सैषा योग विद्या**' जिस विद्या के जान लेने पर सभी कुछ जान लिया जाता है वह हमारी योग विद्या है। इस रास्ते पर चलकर ही मनुष्य सर्वज्ञाता बन सकता है। परमाणु '**परममहत्वान्तो ऽस्यवशीकारः**' परमाणु से लेकर महत्तत्व पर्यन्त योगी का अधिकार होता है। योगी ही '**कर्तुमकुर्तम्**' बिगड़े को फिर बना दे उसे '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम**' की शैक्ति वाला कहते हैं। गीता में भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने युक्त योगी के लक्षण इस प्रकार बताये हैं–

'ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्तइत्युच्यते योगी सम लोष्टाश्म-कांचनः।

अर्थात् जो ज्ञान–विज्ञान–तृप्तात्मा हो, कूटस्थ हो, जितेन्द्रिय हो, मिट्टी, पत्थर व सोना जिसकी दृष्टि में समान हो वह युक्त योगी कहलाता है। ये पाँच बातें युक्तयोगी में होनी चाहिये। ज्ञानतृप्तात्मा उसे कहते हैं, जिसने प्रकृति के सारे नियमों व विश्लेषणों को समझकर उन पर अधिकार कर लिया हो अर्थात् जिसने महाभूतों पर, तन्मात्राओं पर इन्द्रियों पर अधिकार कर लिया हो, वह ज्ञान तृप्तात्मा कहा जाता है।

महाभूतों पर जय का एक उदाहरण देता हूँ। ऋषिकेश में चन्द्रभागा नदी है। काफी दिन पहले एक योगी जल के ऊपर खड़ाऊ पहनकर पानी के ऊपर इस प्रकार आये जैसे कोई जमीन पर चल रहा हो। गंगा के इस तरफ आकर कुछ क्षण रुककर पुनः इसी प्रकार से जल के ऊपर चलते हुये लौट गये। उन महात्मा जी की इस प्रकार की क्षमता को बहुत लोगों ने देखा था। हमारे बच्चे रंगीलाल हैं। वे भी इस घटना को आँखों देखी बात कहकर बताया करते हैं। योग दर्शन में एक सूत्र आता है '**उदान जयाज्जल पंक कण्टकादिष्वसङ्गः उत्क्रान्तिश्च**' अर्थात् उदान वायु पर जय कर लेने पर योगी पानी, कीचड़ आदि में धसता नहीं है। वह जमीन से ऊपर को भी उठ जाया करता है। ऊर्ध्वगमन करने की ताकत उसमें होती है। यह प्रकृति पर हकूमत का एक उदाहरण है। कूटस्थ का अर्थ है–आत्म ध्यान से विकार रहित स्थिति को प्राप्त हो जाना। विजितेन्द्रि का अर्थ है, कामनायें उसको विचलित नहीं कर सकती। ऋषिकेश में गंगा किनारे शीशम झाडियों में एक महात्मा अवधूत केशवानन्द जी रहते थे। एक बार वह काफी अस्वस्थ हो गये। उन्हें इलाज के लिये डाक्टर के पास ले जाया गया। डाक्टर ने सलाह दी कि वह यदि वीर्य खण्डित कर दें तो स्वस्थ हो सकते हैं। उन्होंने इस बात से इंकार कर दिया। उन्हें स्पर्शज्ञान ही नहीं था। ऊर्ध्वरेतस योगी थे वह। उन्होंने पहले ही

बता दिया था कि मेरी इच्छानुसार ही अमुक दिन यह शरीर छूट जायेगा। ठीक वैसा ही हुआ। योगी विज्ञान **'तृप्तात्मा'** होता है। इसका मतलब यह होता है कि उसे आत्म साक्षात्कार हो चुका होता है उसके जड़ चेतन की गाँठ टूट जाती है। कहने को तो हर व्यक्ति कह सकता है आत्म साक्षात्कार हो गया किन्तु आत्म साक्षात्कार के क्या लक्षण हैं ? इस बात का संकेत योग दर्शन में मिलता है—**'ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वाद वार्ता जायन्ते'**।

आत्म दर्शन से पहले—पहले योगी में यह क्षमतायें आती हैं। जिस प्रकार से सूर्योदय से पहले हल्का—हल्का उजाला जब होने लगता है तो हमें थोड़ा—थोड़ा मकान, वृक्ष आदि दिखाई देने लगते हैं। वैसे ही योगी को वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान होने लगता है। प्रातिभ ज्ञान की आभा से अमुक व्यक्ति क्या विचार कर रहा है ? इस बात का ज्ञान योगी को होने लगता है। **'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा'** वहाँ पर योगी को ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हो जाता है। **'या मेधां देवगणा पितरश्च समुपास्ते'** जिस मेधा के लिये देवगण और पितर उपासना करते रहते हैं वही मेधा ऋतम्भरा प्रज्ञा है। ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय होने पर **'तज्जः संस्कारोऽन्य संस्कार प्रतिबन्धी'**—अर्थात् ऋतम्भरा के संस्कार अन्य सभी प्रकार के संस्कारों को रोक देता है। इस ऋतम्भरा के साथ ही 'प्रातिभ श्रावण आदि क्षमतायें योगी में आ जाती हैं। ये सब आत्म साक्षात्कार से पहले—पहले होता है अभी आत्म साक्षात्कार नहीं हुआ होता है। प्रातिभ ज्ञान के उदाहरण के रूप में अपने एक बच्चे की घटना सुनाता हूँ। हमारा एक बच्चा रघुनन्दन प्रसाद (टाट बाबा) था। यह श्री सिद्ध गुफा में रह रहा था। एक बार सफीदों के वैद्य राम स्वरूप हमारे पास दीक्षा लेने आये थे। उन्हें दीक्षा के लिये तैयार देखकर टाट बाबा ने कहा—भाई जी, आप गुरू जी से दीक्षा जल्दी ले लें। उनके कहने पर रामस्वरूप ने जल्दी दीक्षा ले ली। दीक्षा ले लेने के बाद उससे पूछा गया कि 'आप दीक्षा के लिये जल्दी क्यों कह रहे थे ? उन्होंने उत्तर दिया—इस समय तुम्हारी स्त्री को लड़का हो चुका है। अब आप को सूतक लग गया है, यदि विलम्ब हो जाता तो आप दीक्षा नहीं ले सकते थे'। लोगों ने पूछा—आपको इस बात का ज्ञान कैसे हुआ कि लड़का होने वाला है उन्होंने कहा—पहले मेरे मन में यह बात आई कि लड़का हो रहा है। जब ऐसी कोई भी भावना मेरे मन में आती है वह सत्य होती है फिर मैंने इसे देखना चाहा, तो मुझे प्रसव होता लड़का भी दिखाई दे गया'। इस प्रकार आदर्श की सिद्धि से योगी दूर—दूर की देख लेता है। उसने भी जन्मते बच्चे को इस सिद्धि से देख लिया इसी प्रकार से श्रावण सिद्धि से हजारों कोस दूर की बात को योगी सुन सकता है हजारों कोस दूर की वस्तु का स्पर्श कर सकता है। **'यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति'** योग विद्या से सब कुछ जाना जा सकता है हृदय की भूमिकाओं की बात होती है। इस का आधार ध्यान योग ही है। मेरे बड़े गुरू भाई ब्र. गोपालानन्दन जी की मन में इच्छा हुई—सृष्टि कैसे बनी ? योगी की एक ऐसी अन्तर्भूमिका होती है जिसमें उसके मन की शंका की बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है। अन्तर्यामी सर्वशक्तिमान गुरुदेव उस ऋतम्भरा प्राप्त योगी के संकल्पों का जवाब दो प्रकार से दिया करते हैं या तो उसकी बुद्धि में ही वे भाव आ जाते हैं जिन प्रश्नों का जवाब चाहता है या ध्यान की अवस्था में उसे आकाश वाणी होती है जिसके द्वारा उसके प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है या अक्षरों के रूप में लिखे हुये उसके सामने आ जाते हैं। इनमें से सबसे उत्तम जवाब वह होता है जिसका हृदय में अपने

आप स्फुरण हो जाये। ब्र. गोपालानन्द जी के मन में सृष्टि उत्पत्ति के बारे में जानने की उत्कण्ठा हुई। ध्यान में एक ऋचा सामने आई **'ऋषयों मन्त्र द्रष्टारः'** मन्त्र जिनके सामने आये वह ऋषि कहलाते हैं। ऋचा का प्राकट्य तब समझना चाहिये तब बिना पढ़ी व सुनी बात सामने आ जाये। हम लोग तो वेदों के भाष्य पढ़ते हैं टीकायें पढ़ते है। किन्तु योग मे एक ऐसी भूमिका होती है जिसमें शब्द सुनने मात्र से उसके अर्थ का ज्ञान हो जाता है। यह भीतर की रुहानी विद्या है। सारे विश्व के प्राणियों की आवाज के अर्थ को योगी समझ लेता है। ब्र. गोपालानन्द जी के सामने प्रकाश पुंज में एक ऋचा आई—

'हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे भूतस्य जातः पतिरेकासीत्।
सदाधार पृथ्वीम् द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्'।

अर्थात् सबसे पहले हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, हिरण्यगर्भ ही ब्रह्मा है। उस हिरण्यगर्भ से ही सृष्टि का प्रस्फुटन हुआ। **'तस्माद्वा एतस्माद्वा आकाशः सम्भूतः। आकाशाद् वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्‌भ्यः पृथ्वी'**। उस आत्मा से आकाश उत्पन्न होता है उस से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है यह क्रम है। इस ऋचा के आने के पश्चात उन्होंने इस क्रम को दृश्य के रुप में भी तत्वों मे परिवर्तित होते देख लिया। इस प्रकार से ऋतम्भरा प्राप्त योगी के लिये भी संसार में अज्ञेय अथवा रहस्य नहीं रहता है। अस्तु।

योगी की उपासना में और अन्य लोगों की उपासना में क्या अन्तर है ? यह बतलाना आवश्यक है। योगियों से इतर लोग, देवताओं को आत्म समर्पण करके उनसे थोड़ी–थोड़ी शक्ति लेते हैं, वरदान आदि प्राप्त करते है भूत प्रेतादि की उपासनाओं से शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार से मनुष्य **'देवानाम् पशुः'** देवताओं का पशु होता है। किन्तु योगी अपनी शक्ति के आप मालिक होते है वे दूसरे के आधीन रहकर जीना पसन्द नहीं करते। योगी कुण्डलिनी महाशक्ति को जागृत कर अपनी शक्ति पर अपना नियन्त्रण रखता है' **अदीनाः स्याम् शतम्' शरदः'** का पाठ योगी लोग ही पढ़ते हैं। केवल मात्र ध्यान के द्वारा अपने भीतर की ताकतों को जागृत करके सब पर अनुशासन करने वाले एवं प्रकृति पर हकूमत करने वाले होते हैं—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः।।

युक्त योगी अपने को सभी प्राणियों में स्थित देखता है और सभी प्राणियों को अपने में देखा करता है। यह उसके आत्मस्थिति की बात हुआ करती है। अन्य लोग वरदान आदि के लिए उपासना करते हैं। जबकि योगी लोग स्वयं **कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्'** की सामर्थ्य वाले होते हैं। मनुष्य देवताओं की उपासना करता करते हैं कभी राम की उपासना करते हैं शक्ति के कारण। दुनिया शक्ति का पुजारी है। उनके पास अपनी शक्ति नहीं होती इसलिये शक्ति वालों की उपासना करते हैं' जबकि योगी 'ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा' होकर सर्वसमर्थ होते हैं। योग कहाँ से चलता है यह मैंने तुम्हें कई बार बताया हुआ है। धारणा, ध्यान समाधि की पुष्टि पाकर फिर संयम की स्थिति पर पहुँचता है। योगी ही

किसी निर्णय पर पहुँच सकता है। क्योंकि वह आत्म ध्यान परायण होता है। मैंने तुम्हें ब्र. गोपालानन्द जी के हाथ कटने की बात बताई थी। श्री प्रभु जी से लोगों ने पूछा' प्रभु जी इनका हाथ क्यों कटा ? यह तो योगी हैं ध्यानी हैं फिर उनके साथ ऐसा क्यों ? कुतर्क करने वाले लोग जल्दी कुछ न कुछ बोल लिया करते हैं किन्तु प्रभु जी ने कहा—तुम लोग स्वयं ध्यान में देखो कि इसका हाथ क्यों कटा। हमारे गुरु भाईयों ने ध्यान शक्ति से सब कुछ जान लिया कि क्यों कटा? बाद में तथ्य का पता लगाने पर सत्य पाया। अस्मितानुगत योग पर आरुढ़ होने पर योगी की अस्मि अस्मि, इस एक ही प्रकार की वृत्ति बनी रहती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा इसके बाद की स्थिति है।

ज्यों गूंगा गुड़ खाये नैनन स्वाद सरहाये।

इस स्थिति को योगी स्वयं ही अनुभव कर सकता है। हर वस्तु के पीछे जो परम सत्य है उसका दर्शन योगी को होता है। सब कुछ यथार्थ देखता है। ऋतम्भरा प्राप्त योगी यदि भविष्यवाणी करता है तो वह सत्य होता है। पुराणों में एक भविष्य पुराण है। इसमें कलिकाल में क्या–क्या होगा, इस बात की भविष्यवाणी पहले से ही की हुई है। इसके अनुसार—

पृथ्वी में औषधियों में रस नहीं रहेगा। इसके गुणों में क्षीणता आ जायेगी। कागज की मुद्रा होगी। आज कागज की ही मुद्रा है। पत्नियाँ पति के विरुद्ध चलने वाली होंगी। पुत्र, पिता को कलंकित करने वाले होंगे। पृथ्वी निर्बीज होती जायेगी— धन–धान्य की कमी होगी, आदि–आदि। आज सब सही घटित हो रहे हैं।

भविष्यवाणी करने का अधिकारी ऋतम्भरा प्राप्त योगी ही हो सकता है अन्य कोई नहीं। अन्य यदि भविष्यवाणी करेंगे तो सत्य नहीं निकलेगी। ऋतम्भरा प्राप्त ऋषि ही भविष्यवक्ता हो सकते हैं। जो लोग समाधि का अभ्यास करते हैं वे अवश्य ही उत्कर्ष पाते हैं। सिद्धों के दर्शन होने पर वे तुम्हारी शक्ति को बढ़ा देते हैं। ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय होने पर एक विशेषता यह तो होती है कि ऋतम्भरा के जो नये संस्कार बनते हैं। वे अन्य सभी हेय संस्कारों के प्रतिबन्धी होते हैं। **'तज्जः संस्कारोऽन्य अन्य संस्कार प्रतिबन्धी'** ऋतम्भरा के संस्कारों के उदय होने पर जन्म मरण के चक्कर में डालने वाले संस्कार रुक जाते हैं। पुराने संस्कारों को उसी में भोग लेता है। इसलिए योग ही उत्तमोत्तम मार्ग है। मनुष्य को अपने ध्येय से विचलित नहीं होना चाहिये। हृत्पुण्डरीक अथवा हृदय कमल को सीधा कर लोगे तो खेचरी आदि मुद्रायें स्वाभाविक होने लगेंगी।

अस्मिवृत्ति के प्रकट होने के बाद **'अहं ब्रह्मास्मि'** वाली बात भी स्वयं प्रकट हो जाती है। केवल मात्र योग की धारणा को पुष्ट करते चलो। हम योगी हैं ऐसी धारणा बनाते चलो **'जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते'**। योग का जिज्ञासु भी शब्द ब्रह्म–कर्मकाण्ड से आगे निकल जाता है। **'भवेद्वीर्यवती गुप्ता गुरु वक्त्र समुदभवः'**।

गुरु मुख से सुनी विद्या वीर्यवती होती है अतः मेरे मुख से योग के पवित्र सिद्धान्तों को सुनकर अपने को पवित्र योग मार्ग की ओर चलाओ। यदि ऐसा करोगे तो श्री प्रभु जी की कृपा अवश्य होगी।

***

गुरुदेव का जन्मोत्सव एक दुर्लभ पर्व

आचार्य (डा०) दासलाल शर्मा

जड़ (प्रकृति) तथा चैतन्य (पुरुष) के संयोग से जो जन्म होता है यह हमारा सच्चा जन्म नहीं है। हमारा वास्तविक जन्म तो तब होता है जब किसी ब्रह्मज्ञानी गुरु की कृपा से हम अपनी आत्म शक्ति के प्रकाश में जीवन जीना शुरू करते हैं। जैसे–जैसे हमारे अन्दर आत्म तेज का विकास होता जाता है, दुःख मूलक प्रकृति से हमारा सम्पर्क टूटता जाता है। जड़–चेतन की गाँठ का जकड़न कमजोर पड़ता जाता है। अर्थात् भगवान की संसार रूपी माया का उल्लंघन करना हम को आ जाता है। और तब प्रकृति बन्धन का दुःख हमें किसी भी प्रकार अनुभव नहीं होता।

त्रिजगत पावन भगवान कहते हैं–

> **सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।**
> **तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।।**

अर्थात–हे अर्जुन ! नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियाँ अर्थात् शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं, प्रकृति तो उन सबकी गर्भ धारण करने वाली माता है और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूँ।

भगवान उक्त श्लोक के माध्यम से अपनी प्रकृति को अर्थात् पाताललोक से ब्रह्मलोक पर्यन्त जो उनकी नाशवान सृष्टि है इसको समस्त देहधारी प्राणियों को जन्म देकर उनका पालन–पोषण करने वाली माता कहकर पुकारते हैं। इसमें पंचभौतिक जड़ संसार जो हमारी आँखों द्वारा दृष्टिगोचर है अर्थात् पृथ्वी लोक इस प्रकृति स्वरूपा माता का गर्भ स्थान है। प्रकृति अपने स्वामी परमात्मा के चैतन्य प्रकाश को बीज–रूप में पृथ्वी के अन्दर आधान करती है और सभी प्राणियों को जन्म देती, उन्हें पोषण देती है। संसार जिसे हम माया कहते हैं वह भगवान के वचनानुसार वास्तव में प्रकृतिस्वरूपा माता का गर्भ स्थान ही है। इसी गर्भ में हमारे शरीर का निर्माण हुआ, इसी में जन्मे, इसी में जीये और मर गये किन्तु मर कर कहीं नहीं गये इस संसार रूपी गर्भ में ही रहे अर्थात् न कहीं से आये न कहीं गये वहीं के वहीं रहे। जिसे हम जन्म और मरण समझते रहे वह कुछ नहीं था एक झूठा खेल था, स्वप्न मात्र था। हम केवल अपनी अज्ञानता के कारण अब तक इस भयंकर दुःख के दाता संसार रूपी गर्भ में जन्मते–मरते चले आ रहे हैं। यह हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। ऊँचे दिव्य सुख स्वरूप लोकों में जाकर भी मुक्ति हेतु पुनः प्रकृति माता के गर्भ अर्थात् संसार में कू [illegible] । है।

इस संसार रूपी गर्भ में कौन से किस प्राणी ने सुख उठाया है ? माता के गर्भ में जैसे शिशु घोर कष्ट भोगता है और माँ के उदर से बाहर निकलने के लिए परम पिता परमात्मा से अनेक प्रकार की

प्रार्थनाऐं करता है और उन्हें बार-बार वचन देता है कि अब की बार मैं जन्म लेकर अपने आत्मोद्धार के लिए ही जीवन जीऊँगा। मैं आपके चरण कमलों में ही सारा जीवन समर्पित कर दूँगा। हे प्रभु! मुझे शीघ्र ही इस गर्भ के कष्ट से मुक्त कीजिए। इसी प्रकार इस संसार रूपी गर्भ में जन्मों-जन्मों से फँसे मनुष्य घोर कष्ट उठाते हैं। प्रकृतिजन्य त्रिताप सम्बन्धी महान दुःखों से व्याकुल होकर वे सभी उदरस्थ बालक की भाँति ही प्रभु को अनन्य भक्ति से पुकारते हैं उनकी शरण पाने की प्रार्थनाऐं करते हैं ताकि उनके शरणागत होकर संसार रूपी महागर्भ के कष्ट से सदा के लिए मुक्त होकर परमात्म आनन्द में नये-नये जीवन की शुरुआत कर सकें।

जिस प्रकार अत्यन्त दीन असहाय उदरस्थ बालक परमात्मा का अनुग्रह पाकर अपनी चेष्टा द्वारा महान कष्ट उठाता हुआ भी गर्भ के कष्ट से बड़ी आसानी से मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार यह दीन मनुष्य भी परमात्मा के परमानुग्रह स्वरूप इस संसार रूपी गर्भ के महादुःख से अत्यन्त कष्ट उठाता हुआ भी, अनेक सत्कर्म और पुरुषार्थ करता हुआ अर्थात् अपनी ही कर्म चेष्टा द्वारा बड़ी सरलतापूर्वक मुक्त हो जाता है।

फिर भी संसार सागर से मुक्ति पाना इतना सरल नहीं है। पुरुषार्थ करने के लिए परमात्मा के मार्ग-दर्शन व उनके कृपा प्रसाद की परम आवश्यकता होती है। दुःखी भक्तों की आर्तपुकार को सुनकर परमात्मा को स्वयं ही इस संसार रूपी गर्भ में जन्म लेकर आना पड़ता है। करुणा निधान परमात्मा अपने भक्तों के उद्धार हेतु पृथ्वी पर सद्गुरु रूप में अवतरित होते हैं, उन्हें अपनी शरण में लेते हैं। वे अपनी जीवन लीला द्वारा भक्तों को संसार सागर से स्वयं तरकर दिखलाते हैं फिर उनके भक्त उनके लीला जीवन को आदर्श बनाकर उनकी शिक्षाओं और वचनों के अनुसार गुरु सेवा करते हैं, उनके कृपा प्रसाद को प्राप्त करते हैं। कृपा प्रसाद से ही संसार में बड़े-बड़े कार्य करते हुये तरने का सामर्थ्य प्राप्त होता है। आज्ञा पालन ही गुरुदेव की परम सेवा है।

गुरु गीता में वर्णन है-

गुरोः कृपाप्रसादेन, ब्रह्मा विष्णु महेश्वरः।
सामर्थ्य तत्प्रसादेन, केवलं गुरु सेवया।।

अर्थात-ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर गुरु की कृपा प्रसाद से ही हुये हैं। केवल गुरु की सेवा करने से और गुरु के कृपा प्रसाद से उनको सामर्थ्य प्राप्त होता है।

संसार में समय का विशेष महत्व है। कोई समय मनुष्य को दुःख में डुबा देता है, कोई समय हर्षोल्लास से भर देता है। दुःख लाने वाले समय को कौन पसन्द करता है? अनुकूल समय ही सबको पसन्द होता है। जिस 'समय' के अन्तर्गत हमारी कोई विशेष मनोकामना पूर्ण होती है हम उस हर्ष प्रदायिनी शुभ घड़ी को जीवन पर्यन्त नहीं भुला पाते। किन्तु आध्यात्म के जिज्ञासु भगवान के भक्तों के लिए तो वह समय विशेष प्राणों से भी ज्यादा प्यारा होता है जिसमें अनन्त जीवन के दाता उनके परम पूज्य गुरुदेव जन्म लेते हैं। इस शुभ घड़ी का प्रतिवर्ष जब पुनरावर्तन होता है तो गुरु भक्तों का अन्तः करण गुरुदेव के प्रेम में आनन्द से भर जाता है। इस विशेष अवसर पर पूज्य गुरुदेव

बड़े आह्लादित दिखलायी पड़ते हैं। जिस समय उनके बच्चे भक्तिपूर्वक उनका पूजन करते हैं, वस्त्राभूषण आदि सुन्दर भेंट समर्पित करते हैं, उनके चरण धोते हैं, पंचामृत से स्नान कराते हैं उस समय गुरुदेव अपने योगस्थ स्वरूप में अवस्थित हो जाते हैं। वे ईश्वरीय परम आह्लाद से भरे रहते हैं ये घड़ी गुरुभक्तों के लिए बड़ी दुर्लभ होती है।

भगवान शंकर माता पार्वती को गुरु चरणों के पूजन का महत्व समझाते हुये कहते हैं—

गुरुरेव जगत्सर्वं, ब्रह्मा विष्णु शिवात्मकम्।
गुरोः परतरं नास्ति, तस्मात्सं पूजयेद गुरून्।।

अर्थात्—हे पार्वती! ब्रह्मा, विष्णु और शंकर जी से व्याप्त यह सारा जगत गुरु ही है। गुरु से श्रेष्ठ कोई नहीं है। इसलिए भली प्रकार से गुरुदेव का पूजन करें।

यह शुभ दिन सदा ही गुरु भक्तों के लिए परम् कल्याण का दिन होता है क्योंकि इस दिन गुरुदेव की प्रसन्नता अपने सभी बच्चों पर अकारण ही बरसती है। अनेक विघ्नों—अवरोधों का नाश होता है। योग मार्ग सहज होता चला जाता है।

योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का प्राकट्य विजय दशमी के पावन दिन को हुआ था। अश्विन माह के नवरात्रों में विजय दशहरा का पर्व आता है। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का पावन जन्म चैत्र शुक्ला नवमी के दिन हुआ था। यह दिव्य नवमी भी नवरात्रों में ही सुशोभित होती है। इस प्रकार पूज्य श्री गुरुदेव व परम प्रभु दादा गुरुदेव दोनों का ही जन्म नवरात्रों में हुआ। महापुरुषों का सम्पूर्ण जीवन युगों—युगों तक, अज्ञानता की अग्नि के अथाह कुण्ड में सुलगते आत्मोद्धार के जिज्ञासुओं के लिए प्रेरणास्रोत शक्तिदायिनी वस्तु बनकर रहा करता है।

हमारे परम् आराध्यदेव सद्गुरुदेव भगवान योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का जन्म १६११ में हुआ था। श्री गुरुदेव जी का प्रथम—जन्म महोत्सव सन् १६५५ में प्रो० श्री ऋषिराम भाई जी द्वारा गुरुदेव जी से विशेष प्रार्थना करने पर, दिल्ली में उनके निवास स्थान पर मनाया गया था। भाई-जी दिल्ली विश्व विद्यालय में अंग्रेजी विषय के प्रोफेसर थे। तभी से गुरुदेवजी का जन्म दिवस मनाने का क्रम चल पड़ा। हजारों—लाखों सत्संगी भाई बहन इस महान उत्सव पर गुरुदेवजी के पावन चरण—कमलों का सर्वपापताप हारी चरणोदक ग्रहण करते हुये अपने जीवन को धन्य करते चले आ रहे हैं।

गुरु जन्मोत्सव के पावन पर्व पर दूध, दही, घृत, शहद के साथ तैयार किये गये पञ्चामृत से गुरुदेव जी को स्नान कराया जाता था। वैदिक मंत्रों के द्वारा शिवाभिषेक की तरह ही पूज्य गुरुदेव जी का अभिषेक होता था सभी लोग अपने साथ दूध लाते थे, स्नान कराते और चरणामृत पान करते थे। शिष्य के जीवन में केवल यही एक दिन होता था जब उसे गुरु चरणों को धोने का और चरणोदक पान का सौभाग्य प्राप्त होता था। इस पर्व के अतिरिक्त दिनों में लोग इसके लिए अति लालायित रहते थे किन्तु गुरुदेव कभी स्वीकृति नहीं देते थे।

जैसे शक्तिपात गुरुदेव जी से माँग कर नहीं लिया जा सकता। वह उनकी प्रसन्नता की स्थिति

में स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार चरणोदक भी कोई विरला बहुत ऊँचे पुण्य–पुंज वाला ही उनकी प्रसन्नता प्राप्त करके ग्रहण कर सकता था। किन्तु जन्म दिवस के अवसर पर तो बिना पात्रता के भी गुरुदेव अपने सभी दीन बच्चों को परम आह्लादित होकर अपने चरण कमल धोने की पूर्ण स्वतन्त्रता दिया करते थे। और उनके कृपा प्रसाद आशीर्ष वरदान व शक्तिपात बिन माँगे सहज ही सभी को प्राप्त होते थे।

आज गुरुदेव का पावन दर्शन हमारे चर्म चक्षुओं के सामर्थ्य में नहीं है, किन्तु हमारा प्रेम और विश्वास उनकी उपस्थिति को आज भी वैसे ही अनुभव करता है। वे स्वयं आते हैं और पहले से कहीं अधिक इस पर्व पर अपनी अनुग्रह–वर्षा करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। गुरुदेव के समय की भाँति ही प्रतिवर्ष उसी परम्परा व विधि विधान के साथ अपने सभी योग केन्द्रों पर गुरुदेव का जन्मोत्सव पूर्ण श्रद्धा भक्ति के साथ मनाया जाता है। गुरु गीता की आज्ञा **'गुरोः पादोदकं पीत्वा जलं शिरसि धारयेत्'** के अनुसार सभी लोग गुरुदेव के चरणोदक को पीकर जल को अपने सिर पर धारण करते थे। इतने मात्र से ही सब तीर्थों का फल शिष्यों को प्राप्त हो जाता है जैसा कि गुरु गीता का वचन है– **'सर्वतीर्थावहागस्य प्राप्नोति सुफलं नरः'** किन्तु इतने से ही गुरुदेव के चरणोदक की दुर्लभता और महत्ता भली भाँति स्पष्ट नहीं होती तो भोले शंकर इसकी महिमा को ठीक से समझाते हुये जगदम्बा से कहते हैं–

सप्त सागर पर्यन्तं, तीर्थास्नानदिकैः फलम्
गुरु पादोदकस्यापि, सहस्रांशेन दुर्लभम्।

अर्थात–हे भवानी ! सप्त सागर पर्यन्त तीर्थ स्नानादिक का फल गुरुदेव के चरणोदक के हजारवें अंश के बराबर भी नहीं है इसलिए गुरुदेव का चरणोदक अत्यन्त दुर्लभ है।

अतः इन शास्त्रीय वचनों के अनुसार यह सिद्ध होता है गुरु भक्तों को पवित्र करने वाली 'चरणोदक' के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। श्रद्धापूर्वक एक बार ही ग्रहण किये गये चरणोदक से असंख्य पापों का नाश होता है जिससे अन्तःकरण में पवित्रता की प्रतिष्ठा होती है। शुद्ध भाव पैदा होते हैं और चित्त की एकाग्रता बढ़ती है।

श्री गुरुदेव जी का जन्म दिवस व्यापक स्तर पर समस्त शिष्य समुदाय को आमन्त्रित करके गुरुदेव जी के जन्म स्थान अलुपुर में बड़े हर्षोल्लास के साथ आयोजित किया जाता है। पूज्य गुरुदेवजी से अनेक बार ऐसे पावन अवसरों पर अनेक शिष्यों ने विनम्र प्रार्थना की थी कि आपका जन्म दिन अलुपुर में मनाने की अनुमति मिलनी चाहिए किन्तु पूज्य गुरुदेव जी बड़े ही संकोची स्वभाव वाले थे। उन्हें अपना बढ़–चढ़ कर सम्मान कराना, दुनियाँ में अपने नाम पर प्रचार कराना, अपनी पूजा कराना बिल्कुल पसन्द नहीं था। वे इन चक्करों से सदा बचते थे। किन्तु भक्तों के प्रेम में विवश हो जाते थे। वे अपने जीवन काल में रहते हुए अपने कारण से अपनी और अपने जन्म स्थान की बड़ाई नहीं चाहते थे।

शिष्य के लिए गुरुदेव का जयन्ती पर्व बहुत महत्त्व का दिन होता था। गुरुदेव के सभी शिष्यों को

सुविधानुसार अपने–अपने निकटस्थ योगाश्रमों में पहुँचकर इस उत्सव में अवश्य ही सम्मिलित होना चाहिए। श्री गुरुदेवजी के अनुग्रह बिना आध्यात्म की कल्पना नहीं है। हमें इस जन्म में अपने उद्धार हेतु पूर्ण गुरुदेव जी की प्राप्ति हुई है यह छोटी बात नहीं है। पूर्ण गुरु सबको नहीं मिलते। यह हमारे बहुत ऊँचे पुण्य संस्कारों का फल है। हमने ही जन्मों–जन्मों में उन्हें पुकारा था, इसलिए वे मिले। अब संसार के आकर्षण में, परिवार की मोह ममता में पढ़कर गुरुदेव से विमुख रहना क्या हमारी मूर्खता नहीं है?

हमारे देश में जन्मे तुलसी, कबीर, सूर, मीरा, सहजोबाई आदि अनेक महापुरुषों ने मुक्त कण्ठ से गुरुदेव की महिमा का गान किया है और सभी ने **'गुरु साक्षात् महेश्वर'** के अनुसार गुरुदेव को सर्वोपरि माना है। संसार में सद्गुरु का महत्व इसलिए भी अधिक है कि वे व्यापक सत्ता के स्वामी होते हुये भी व्यक्त रहकर शिष्यों के लिए सदेह सुलभ हो जाते हैं। गुरुदेव से शक्ति पाकर शिष्य महान से महान कार्य संसार में कर लेता है।

गुरुदेव की संकल्प शक्ति अमोघ रहती है। गुरुदेव के चित्त की प्रसन्नता में उनका 'संकल्प' छिपा रहता है। जब वे अपने शिष्यों पर उनकी सेवा, और सदाचरण को देखकर प्रसन्न होते हैं तो उनके लिए कुछ न कुछ कल्याणकारी संकल्प अवश्य करते हैं। वह संकल्प एक समय विशेष में आकर अवश्य ही पूर्ण होता है। इस बीच में अनेक प्रकार की बाधाएँ–आपदाएँ, अनेक प्रकार के कष्ट आते ही रहते हैं किन्तु शिष्य अनेक परीक्षायें देता हुआ गिरता–चढ़ता, धीरे–धीरे संभलता हुआ गुरुदेवजी के संकल्प बिन्दु तक पहुँच ही जाता है। गुरुदेव अपने संकल्प के अन्तर्गत अपने शिष्य को जो बनाना चाहते बना ही देते हैं। इसलिए जप, ध्यान, सदाचार, निष्काम सेवा भक्ति के द्वारा गुरुदेव को प्रसन्न रखने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए। किन्तु जन्मोत्सव पर तो गुरुदेव स्वयं ही अपने पूर्ण आह्लाद में होते हैं। ऐसे दुर्लभ समय में निर्मल प्रेम युक्त सेवा भाव से गुरुदेव को रिझा कर अपने कल्याण हेतु उनके चित्त में संकल्प पैदा कराना अति आसान होता है। अतः इन सभी बातों को ध्यान में रखकर गुरुदेव के जन्म दिन का महत्त्व अवश्य ही समझना चाहिए।

पूज्य गुरुदेव तो सदा पूज्यनीय, सदा वन्दनीय, सदा ध्यान करने योग्य, सदा चिन्तन करने योग्य हैं। उनके भक्तों पर सदैव ही कृपायें बरसती रहती हैं। गुरुदेव अपने भक्तों को मुक्ति जैसी अलभ्य वस्तु तो प्रदान करते ही हैं साथ ही उन्हें आवश्यकतानुसार सांसारिक भोग (सुख–सुविधाएँ) भी प्रदान करते हैं जैसा कि गुरु गीता में कहा गया है—**'भुक्ति मुक्ति प्रदातारं तस्मै श्री गुरुवे नमः'**।

अतः हमें सभी गुरुदेव के भक्तों को गुरुगीता के निम्नांकित वचन का सदा ध्यान रखना चाहिए—

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः, पूजामूलं गुरोः पदम्।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुरोः कृपा।।

***

गुरु महात्म्य

कु० रजनी शर्मा (आगरा)

गुरुदेव अनन्त अनादि है और गुरुदेव की महिमा भी अनादि और अनन्त है। गुरुदेव की महिमा का वर्णन तो वाणी से परे है। गुरु महिमा के बारे में जितना कहा जाय उतना कम है। मनुष्य सभी प्रकार के ऋणों से कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। गुरुदेव तो सबसे परे हैं और जो उपकार वो अपने भक्तों पर करते हैं वह भी सबसे अलग है। गुरुदेव इतने महान है कि वह स्वयं तप करके अपने भक्तों को तपने से बचाते हैं। इतना सब कहने पर भी 'गुरु' शब्द का पूर्ण अर्थ नही निकलता। मेरे दादा गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज गुरुदेव महिमा को बताते हुये अपने व्याख्यानों में कहा करते थे कि–

यत्रावच्छेदनार्थेन कालोनोपरवर्तते सः गुरु

अर्थात् जिस सत्ता का काल अन्त नहीं कर सकता उसी सत्ता का नाम गुरु है। उसकी महिमा का वर्णन करते हुए उपनिषदों में स्पष्ट कहा गया है–

भयादस्याग्निर्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युधावति पंचमः।।

अर्थात् जिसके भय से अग्नि और सूर्य तपते है इन्द्र और वायु कांपते हैं काल दौड़ता फिरता है। इसी सत्ता का नाम गुरु सत्ता है। स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी जिनका ध्यान करते हैं, उनकी स्तुति करते हैं। वह सत्ता गुरु सत्ता ही है। इस प्रकार भक्त को गुरुदेव का लोप नहीं करना चाहिए भगवान शंकर ने स्वयं अपने मुखारविन्द से गुरु गीता का वर्णन करते हुए गुरुदेव के स्वरूप का वर्णन किया है।

अज्ञान तिमिरांधस्य ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अर्थात् जिसने ज्ञान रूपी अंजन की सलाई से अज्ञान रूपी अंधेरे से अंधी हुई आँखों को खोल दिया है। उस गुरुदेव को नमस्कार है।

शास्त्रों में गुरुदेव की महिमा का जो विशद वर्णन मिलता है। हमारे देश में अनेक संत हुए हैं उन्होंने अपने शब्दों में गुरुदेव की महिमा का वर्णन किया है। स्वामी चरण दास जी के अनुसार– यदि सदगुरु की कृपा का साथ मिल जाये तो इस राह में मिलने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मात्सर्य आदि चोर जो रास्ता रोककर लूट लेते हैं वे दूर भाग जाते हैं।

स्वामी चरण दास जी की शिष्या सहजोबाई ने अपना सर्वस्व श्री गुरुदेव जी के चरणों में समर्पित कर दिया। सहजोबाई द्वारा की गई गुरु महिमा सुनकर हमारा हृदय प्रेम से गदगद हो उठता है। उनका एक-एक पद गुरुभक्त को नई भावना प्रदान करता है। उन्ही के शब्दों में,

राम तजूँ पर गुरु न बिसारूँ।
गुरु के सम हरि को न निहारूँ।।

हरि ने पाँच चोर दिये साथा।
गुरु ने लेई छुड़ाय अनाथा।।
हरि ने माया जाल मे गेरी।
गुरु ने काटी ममता बेरी।।
हरि ने राग भोग उर छायो।
गुरु ने आतम रूप दिखायो।।

इस प्रकार सहजोबाई ने गुरुदेव की महिमा का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। गुरुदेव की महिमा का कहाँ तक वर्णन किया जाये ? जितना उनके बारे में कहा जाय लेशमात्र ही है। यह आगे कहती है–

गुरु स्तुति कहाँ लौ कीजे।
बदला कहाँ गुरुन को दीजे।।
गुरु का बदला दिया न जाई।
मन में उपजत है सकुचाई।।
गुरु की किरपा अपरम्पारे।
गुन गावत सब रसना हारे।।

कबीर दास जी ने गुरुदेव की महिमा का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है। वे कहते हैं कि–

सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुन्द की मसि करौं, गुरु गुन लिखा न जाय।।
कबीर ते नर अंध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।।

गुरुदेव सर्वशक्तिमान है वे ही हम सबको चलाने वाले हैं उनकी कृपा से ही मनुष्य संसार रूपी सागर से पार हो सकता है। इसलिए गुरुदेव की बार बार वन्दना करनी चाहिए।

भक्त परशुराम के शब्दों में ईश्वर भक्ति भी बिना सद्‌गुरु की कृपा के नहीं मिलती। वे कहते हैं–

सद्‌गुरु बिना भक्ति नहीं सूझै।
भरम करम में जीव अलूझै।।
सद्‌गुरु वैद कहे ज्यूं कीजै।
आज्ञा मेटि पाँव नहिं दीजै।।
राम नाम अमर जड़ी, सद्‌गुरु वैद सुजान।
जनम मरन वेदना कहै, पाये पद निखान।।

भक्त परशुराम जी कहते हैं– श्री गुरुदेव की भक्ति से अंग–प्रत्यंग धन्य होते हैं। पग-पग पर भी गुरुदेव की छाँव में चलने से अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार भिन्न भिन्न सन्तों ने गुरुदेव की महिमा का वर्णन किया है।

गुरुदेव की महिमा अवर्णनीय है। जितना वर्णन किया जाये थोड़ा है। गुरुदेव इतने महान है कि वह अपने भक्त को स्वयं अपने जैसा बना देते हैं।

तुम्हें जानत, तुमहीं है जाई।

अर्थात उस परमात्मा को पाकर उसमें विलीन होकर मनुष्य उसका ही रूप बन जाता है। इसलिए अपना भूरि–भूरि कल्याण चाहने वाले को सदैव गुरु भक्ति करनी चाहिए।

गुरुदेव को कभी भी मनुष्य नहीं मानना चाहिए। वह तो हम दीनों पर कृपा करने और हमें उबारने के लिए मनुष्य रूप धारण करके इस अवनितल पर आते हैं।

गुरुदेव को सदैव ईश्वर रुप में मानना चाहिए। मानना ही क्या गुरुदेव तो स्वयं ईश्वर है। ईश्वर से आगे अगर कोई है तो वह गुरुदेव ही है। जो कुछ है सब गुरुदेव ही है–

तत्र तत्र चतुर्वक्ता, ब्रह्मणो हरयो भवाः।
असङ्ख्यातारच रुद्राधा, असंख्याता पितामहाः।।
हरयश्चात्य संख्याता, एकं एवं महेश्वरे।।

अर्थात अनन्त ब्रह्माण्डों के अन्दर असंख्य ही ब्रह्मा विष्णु शिव हैं और वह सद्गुरु तत्व नित्य शुद्ध नित्य मुक्त परात्पर निर्गुण ब्रह्म ही है। उसमें से ही ब्रह्मा विष्णु शिव का प्राकट्य है। एक महेश्वर के अन्दर ही ईश आदि सब देवता दिखलाई देते हैं।

ईशद्या सकला देव, द्रश्यन्ते परमात्मनि।

अर्थात ईश आदि सभी देवता उस परमात्मा में प्रकट होते हैं। जिस प्रकार जल के अन्दर जल की लहरें पैदा होती हैं। या सोने से सोने के जेवरात पैदा हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि–

यत्राक्छेदनार्थेन
कालो नावर्तते सः गुरु।

अर्थात जिसका अन्त करने के लिए काल उपस्थित नहीं होता या दूसरे शब्दों में जो सत्ता काल के अधिकार से आगे है। जिसका न कोई आदि है न अन्त वही सत्ता सद्गुरु तत्व है। उसी (प्रभुजी) के प्रकाश से यह सब विश्व प्रकाशित हो रहा है। वही सत्ता परात्पर नित्य एवं नित्य पूज्य है जिस शरीर को वह तत्व अपना अधिष्ठान स्वीकार करता है। वह शरीर उसके तेज से प्रकाशित हो उठता है। ज्ञानी योगी सब उस गुरु की उपासना तत्व रुप से करते हैं इसलिए गुरुदेव की उपासना तत्व रूप से करनी चाहिए। नाम रूप से वन्दना उस शरीर की की जाती है जिसके अन्दर वह तत्व प्रकाशित होता है।

हमारे मनों के अन्दर जो गुरु शब्द की अवहेलना रहा करती है, उसका कारण केवल एक ही होता है कि हम गुरु की सही परिभाषा नहीं जानते।

पुराणों में गुरु की परिभाषा निम्नांकित श्लोकों में प्रकट की जाती है–

गु शब्द स्तवंधकारोस्ति, रु शब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकार निरोधित्वाद गुरुरित्य भिधीयते।।

अर्थात गु शब्द का अर्थ है अन्धकार और रु शब्द का अर्थ है अन्धकार का नाश करने वाला अन्धकार के वेग को रोककर प्रकाश देने वाली शक्ति का नाम गुरु है और वह स्वयं प्रणव स्वरूप है। इसलिए साधक के लिए पुराणों में हमारे पूर्वाचार्यों ने आदेश दिया है–

यावत्कल्पांतकी देह, स्तावद्धवि गुरुं स्मरेत।
गुरुलोपो न कर्त्तव्यः, स्वच्छन्दोयदि भावयेत।।

अर्थात् कल्पभर रहने वाला भी शरीर प्राप्त हो जाये और कितनी ही ऊँची सामर्थ्य वाला हो जाये तो भी गुरुदेव का स्मरण करते रहना चाहिए। आजादी चाहने वाले व्यक्तियों को गुरु की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए, तभी मनुष्य परम श्रेय का भागी हो सकता है।

वन्दौ चरण हृदय धरि,
प्रेम भक्ति मन लाय।
महिमा अगम अपार है।
गुरुजी सदा सहाय।।

***

: पद :

भूपेन्द्र 'अंकुश' जलेसर

गुरुजी! मैं तुम्हारे आधीन।
जैसे जल पर आश्रित रहती सदा विचारी मीन।।
तुम ही मेरा भोजन पानी और बिस्तर कालीन।।
संग हमारो तब से जब से रचना रची नवीन।।
रहूँ नीर में फिर भी मेरा मन-बुधि-चित्त मलीन।।
माया-बगुली निशिदिन खावै; रहत हृदय गमगीन।।
जग-मछुआरा मोय पकड़ने डाले जाल महीन।।
काम-क्रोध के गरम रेत पर पटके पकड़ जहीन।।
'अंकुश' के सब दोष बिसारौ नूतन और प्राचीन।।
दीन बन्धु तुम, दयासिन्धु तुम, तुम हो परम प्रवीन।।

"संस्कार शक्ति व साधना शक्ति"

-कु० रुक्मिणी वर्मा (सहारनपुर)

मुक्ति की कामना करने वाले अनेकों जीव उस परम–पिता–परमेश्वर की ओर बढ़ते हैं अर्थात् आध्यात्म–मार्ग पर चलते हुए योगाभ्यास करते हैं परन्तु हजारों, लाखों में नहीं अपितु करोड़ों में कोई एक भाग्यवान जीव उस परमतत्त्व में विलीन होने योग्य बनता है। करोड़ों में लाखों जीव दस कदम अपने सम्पूर्ण जीवन में चरम लक्ष्य की ओर बढ़ पाते हैं। लाखों में हजार जीव दस कदम और बढ़ जाने का अर्थात् २० कदम चल पाते हैं। हजारों में लगभग एक सैकड़ा दस कदम उससे आगे अर्थात् तीस कदम चल पाते हैं और उन सौ जीवों में लगभग दस जीव दस कदम फालतू चलकर सन्तोष पा जाते हैं तथा बाकी बचे दस में कोई एक विरला ही पूर्ण मनोयोग से अपनी मंजिल तय कर पाता है। अपना लक्ष्य प्राप्त करने वाले इस जीव की एक ही नियति रहती है–

बैठे हैं तेरे दर पे तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्ले कर्म होगा या मरके उठेंगे।।

परन्तु अन्य योगाभ्यासियों की साधना अपने शीर्ष पर क्यों नहीं पहुँच पाती, यह तथ्य विचारणीय है। वैराग्य का भाव न होता तो ये सब आध्यात्म–मार्ग पर चलते ही क्यूँ। प्रायः देखा भी जाता है कि भजन–कीर्तन करते समय, भयंकर रोग से ग्रस्त होने पर, श्मशान में अपने किसी प्रिय स्वजन की चिता देखकर अथवा पश्चाताप की अग्नि में धू–धू जलने पर या फिर बार–बार कामनापूर्ति में असफल रहने पर व्यक्ति में प्रबल वैराग्य का भाव प्रवाह चलता है और इस प्रवाह में जीव ईश्वर भक्ति में आनन्दित होते हुए संसार को निस्सार समझकर दृढ़ संकल्प के साथ साधना में रत रहने लगता है। इस अवस्था में ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन लगातार शुद्धता की ओर अग्रसर हो रहा है। परन्तु उनकी भावना स्थायी नहीं रह पाती। उनका मरघटिया वैराग्य लुप्त होता चला जाता है। शनैः शनैः ये साधक फिर अपने पुराने ढर्रे में उलझ कर रह जाते हैं। ऐसा क्यूँ होता है? यही बात गहनता के साथ विशद रूप से विचारणीय है। अति सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने पर इस प्रश्न का हल काफी सन्तोषप्रद प्राप्त होता है और ज्ञात होता है कि संस्कार शक्ति इनकी साधना शक्ति में विक्षेप उत्पन्न करती रहती है। यदि साधना प्रचण्ड प्रवाह में है तो संस्कार शक्ति क्षीण होकर फलोदित नहीं होती और यदि संस्कार शक्ति प्रचण्ड प्रवाह में है तो साधन शक्ति क्षीण होकर फल का क्षय करवाती है परन्तु दोनों ही शक्तियाँ अर्थात् साधनशक्ति व संस्कार शक्ति एक साथ पूर्ण प्रचण्ड प्रवाह में है तो जीव संघर्षरत रहते हुए उस समय सन्तुलन बनाये रखता है और साधना में विक्षेप अधिक प्रभाव नहीं डाल पाता और वैराग्य भी लुप्त होने से बच जाता है। इस तथ्य को अधिक स्पष्टीकरण से समझाने से पूर्व यह समझना नितान्त आवश्यक है कि संस्कार किसे कहते हैं? संस्कार कहाँ छिपा रहता है? यह मन पर अपना प्रभाव किस प्रकार डालता है ? संस्कार नष्ट कब होता है ? विरोधी संस्कार व सहयोगी संस्कार किस प्रकार के होते हैं ? साधना संस्कार को किस भाँति नष्ट करती है ? किस भाँति बलवती

करती है ? आदि-आदि। अतः अधिक विस्तार सामग्री के कारण सिद्धयोग के सुधी पाठकों के लिए यह प्रकरण धारावाहिक प्रस्तुत किया जा रहा है।

'संस्कार' शब्द की व्यापकता- मानव समाज में भौतिकवाद हो या आध्यात्मवाद 'संस्कार' शब्द का प्रयोग सबसे अधिक होता है। हमारी भेंट यदि अच्छे व्यक्ति से होती है तो हम प्रायः कह उठते हैं कि कितना भला व्यक्ति है, इसके माँ–बाप ने कितने अच्छे संस्कार दिये हैं इसको अथवा बहुत शुभ संस्कारी जीव है अथवा कितनी महान आत्मा है, इसके तो बच्चों में भी महान संस्कार पड़ गये अथवा उपदेशात्मक भाषा में प्रायः सुनने को मिलता है कि अच्छे आचरण पर चलो, जैसे तुम्हारे बुजुर्ग रहते आये ताकि तुम्हारे बच्चों में भी अच्छे संस्कार आयें। दुष्ट व्यक्ति को भी लगभग सभी कहते देखे गये हैं, जैसे– हे भगवान! पता नहीं कैसा व्यक्ति है ये, कितने गन्दे संस्कार इसके माँ–बाप ने दिये हैं इसे। या फिर सुनने को मिलेगा कि शैतानी और हैवानियत तो इसकी नस नस में बसी है क्योंकि इसके तो पूरे खानदान के संस्कार ही ठीक नहीं। नीति दर्शन में स्पष्ट रूप से लिखा है जैसा तुम करोगे वैसे ही संस्कार तुम्हारे बच्चों में भी आयेंगे। धर्म ग्रन्थों में स्पष्ट निर्देश है– माता–पिता से मिले संस्कार जीव का भाग्य बनाने में नींव का काम करते हैं। इस प्रकार हम देखते भी हैं कि जीव के गर्भ में आने पर अनेक संस्कार कराने का विधान हिन्दू धर्म–ग्रन्थों में मिलता है। जैसे– गर्भ में दो संस्कार– एक चौथे महीने में पुंसवन संस्कार तथा आठवें महीने में सीमनतोन्नयन संस्कार। उसके बाद नाड़ीछेदन संस्कार, प्रसूता शुद्धि संस्कार, नामकरण संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार, विद्या–अध्ययन हेतु शुभ संस्कार, विवाह संस्कार और जीवन का अन्तिम संस्कार दाह संस्कार व अस्थि विसर्जन संस्कार। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'संस्कार' शब्द हमारे सम्पूर्ण जीवन में कितना महत्व रखता है इसलिए इसका प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है। परन्तु जिन संस्कारों का यहाँ उल्लेख किया गया है ये संस्कार तो सामयिक व विधि–विधानपूर्ण किये व कराये जाते हैं। ये संस्कार इस नियति को आधार मानकर किये जाते हैं कि इनका प्रभाव शुभ, पवित्र व उत्कृष्ट गुणों से युक्त होता है। इनका विधान वेदोक्त है। इनके द्वारा व्यक्ति शुभ संकल्प की ओर अग्रसर होता हुआ लौकिक व्यवहार करता है। साधना में साध्य व बाध्य जिन संस्कारों का प्रभाव पड़ता है, वे संस्कार मनुष्य सामयिक नहीं बनाता अर्थात् असामयिक करता रहता है। हमें इन्हीं संस्कारों का गहन अध्ययन करना है जो अकस्मात जाने–अन–जाने हमसे बन पड़ते हैं और संस्कारों का चक्र हमारे इर्द–गिर्द बनकर हमें इस प्रकार घेर लेता है कि हम इसके जाल में उलझकर रह जाते हैं और नवीन संस्कार श्रृंखला चल पड़ती है। उस समय इस प्रकार की दशा होती है मानो दलदल से छुटकारा पाने के लिए छलांग लगाई और उतने ही वेग से अधिक गहराई में जाकर दलदल में गिर पड़े। कुसंस्कारों का प्रवाह चक्र जब चलता है तो नवीन संस्कार और भी अधिक बिगड़े हुए बनने का खतरा रहता है। जैसा कि कहा भी गया है, "कंगाली में आटा गीला"। व्यक्ति चाहकर भी परिस्थिति से छुटकारा नहीं पा सकता। अतः हमारे संस्कार गलत न बने इसके लिए गहन सोच की आवश्यकता है। तो आइये समझने का प्रयत्न करें कि संस्कार किसे कहते हैं ?

'संस्कार' शब्द का व्यावहारिक अर्थ-'संस्कार' का अर्थ समझने के लिए इसका मूल कारण (जन्मदाता) के विषय में जानना होगा क्योंकि जिस प्रकार धूम को देखकर अग्नि तत्व का आभास होता है कि यदि कहीं धून है तो वहाँ अग्नि भी अवश्य होगी। बिना अग्नि के धुएँ की कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि धुएँ का मूल कारण अर्थात् जन्मदाता अग्नि ही है। अतः धुआँ अग्नि का विकारी रूप है। ठीक इसी प्रकार 'संस्कार' का मूल कारण कारण 'कर्म' है क्योंकि संस्कार कर्म का ही विकारी रूप है। पहले कर्म बनता है फिर संस्कार। इस बात को हम साधारण उदाहरण के द्वारा अनुमान ज्ञान के रूप में इस प्रकार समझ सकते है। जैसे कोई व्यक्ति पान खाता है पान की लालिमा मुख में रह जाती है। यह लालिमा पान पर लगी वस्तुओं के मिश्रण का विकारी रूप है। हल्दी का दाग कपड़ों पर लगना कपड़े का विकारी रूप नहीं, हल्दी का विकारी रूप है। दाग को देखकर यह अनुमान लगाया जाता है कि यह दाग हल्दी का है अथवा पान का अथवा चाय का। इसी प्रकार व्यवहार को देखकर संस्कारों का और फिर कर्मों का अनुमान ज्ञान होता है कि अमुक व्यक्ति के संस्कार उज्जवल हैं तो कर्म भी शुभ होंगे अथवा व्यवहार व परिस्थितियाँ घृणित हैं, विपरीत हैं तो पूर्व संस्कार अशुभ होंगे अथवा कर्म भी निकृष्ट होंगे। अतः स्पष्टतया सिद्ध होता है कि जिस प्रकार रोटी का सम्बन्ध आटे से और आटे का सम्बन्ध गेहूँ आदि से है ठीक इसी भाँति व्यवहार व चरित्र का सम्बन्ध संस्कार से और संस्कार का सम्बन्ध कर्म से है। अतः पहले कर्म को ही ठीक से समझा जाये कि कर्म क्या है? **कर्म एक गतिशील व्यापार है।** महर्षि कणाद ने कर्म का लक्षण इस प्रकार बताया है–

"कर्म वह है जो एक ही द्रव्य के आश्रित रहे तथा स्वयं गुण से रहित होकर संयोग विभाग का निरपेक्ष कारण हो।" (एक द्रव्यमगुण संयोग विभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् वै० सू०1/1/17)

वैशेषिक दर्शन के रचयिता महर्षि कणाद की इस परिभाषा को सभी दर्शनकारों ने स्वीकार किया है। परन्तु कर्म स्वयं गुण से रहित है इस बात पर बुद्धि में तर्क उपस्थित न हो इसके लिए बताना उचित है कि गुण दोष चित्त के धर्म है कर्म के नहीं। हमारी अच्छी–बुरी भावना कर्म को हीन या महान बनाती है, कर्म वास्तव में एक गतिशील क्रिया है जिसमें उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्च प्रसारण व गमन ये पाँच प्रक्रियायें होती हैं। कर्म में कोई भी क्रिया करने पर नष्ट हो जाती है। अब प्रश्न उठता है कि यदि कर्म करने पर नष्ट हो जाता है तो फल किस आधार पर होता है? इस महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने के लिए सभी दार्शनिक कर्म और कर्मफल के बीच की एक कड़ी मानते हैं, जिसका नाम अदृष्ट है। "कर्म तो करने पर समाप्त हो जाता है परन्तु कर्म का संस्कार अदृष्ट रूप में रह जाता है। इसी अदृष्ट के आधार पर कर्म का फल होता है। अदृष्ट का नियामक अर्थात् इसे पढ़कर देखकर फल का आयोजन करने वाला ईश्वर है।" (न्याय दर्शन)।

न्याय दर्शन की 'अदृष्ट' की मान्यता को भी सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है। अतः यह बात तो निश्चित है कि संस्कार कर्म के बाद की उत्पत्ति है। बौद्ध दर्शन भी स्वीकारता है कि संस्कार पूर्वजन्म की कर्मावस्था है जिसके कारण हमने पाप–पुण्य रूप कर्म किया है तथा उनका अच्छा या बुरा फल

भोग रहे हैं। बौद्ध दर्शन में स्पष्ट कहा गया है कि कर्म शरीर, मन व वाणी तीनों से हुआ करते हैं, अतः संस्कार भी तीन प्रकार के होते हैं– काय संस्कार, मनःसंस्कार, वाक्– संस्कार।

सांख्य दर्शन के सत्कार्यवाद (कारण–कार्य) को समझने के बाद 'संस्कार' के विषय में यह भी निश्चित रूप से कहा गया है कि प्रत्येक संस्कार का मूलरूप (पाप रूप या पुण्य रूप) उसके मूल कारण अर्थात 'कर्म' में उपस्थित रहता है। अतः इस बात को भी सभी दार्शनिक एकमत से स्वीकार करते हैं कि कोई भी कर्म विपरीत संस्कार को उत्पन्न नहीं कर सकता। अतः कर्म व संस्कार में सहधर्मी स्वभाव सम्बन्ध है।

'कर्म' व 'संस्कार' इनकी संक्षिप्त दार्शनिक व्याख्या से इतना स्पष्ट होता है कि कर्म एक स्थूल रूप है तो संस्कार सूक्ष्म रूप है। जिस प्रकार योग दर्शन में स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर इन तीनों का वर्णन आता है, उसी प्रकार कर्म भी क्रिया के मूलरूप में स्थूल है कार्य रूप में सूक्ष्म है और परिपक्व या अन्तिम रूप में फल है। अथवा इस बात को इस प्रकार समझा जा सकता है कि कोई भी क्रिया जब दिखाई देती है अथवा की या कराई जाती है तो उसे कर्म कहते हैं। 'कर्म' फल को दिये बिना नष्ट नहीं होता। अतः क्रिया समाप्त होने के बाद कर्म का सूक्ष्म फल 'संस्कार' के रूप में उत्पन्न हो जाता है। संस्कार भी जैसे–जैसे फल भुगतान की अवस्था से गुजरता जाता है तो अपना अस्तित्व नष्ट करवाता हुआ सदैव के लिये समाप्त हो जाता है। अतः 'कर्म' और 'फल' के बीच की कड़ी जो कर्म का अदृष्ट व सूक्ष्म रूप है, उसे ही संस्कार कहते हैं।

संस्कार कहाँ रहता है ?- संस्कार चित्त में रहता है। कर्म करने के बाद उसकी अदृष्ट छाप चित्त पर रह जाती है। जिस प्रकार के तथा जितने भी कर्म मनुष्य करता है उस प्रकार के उतने ही संस्कार चित्त में अंकित रहते हैं। यही कारण है कि हमारी चित्त तरंगें इन संस्कारों से प्रेरित होकर हमारे स्वभाव को निर्मित करती रहती हैं। चित्त में एकत्रित संस्कारों के कारण ही चित्त की भिन्न–भिन्न अवस्थायें पायी जाती हैं। जैसे– संक्षिप्त चित्त, विक्षिप्त चित्त, मूढ़ चित्त, एकाग्र चित्त और निरुद्ध चित्त। क्षिप्त और मूढ़ चित्त में सात्विक संस्कार नहीं होते। इसलिए ऐसे व्यक्तियों के स्वभाव व व्यवहार को देखकर इनके विषय में सहज ही मुख से ये बात निकलती है कि अमुक व्यक्ति कुसंस्कारी है। विक्षिप्त चित्त में राजसी व सात्विक मिश्रित संस्कार रहते हैं। एकाग्र चित्त शुभ और विशुद्ध सात्विक संस्कारी चित्त होता है निरुद्ध चित्त सभी प्रकार के संस्कारों को क्षीण कर डालता है। जिस प्रकार काँटे से काँटा निकाला जाता है अथवा किसी वस्तु को बहुत बोझ भरे ढेर से दबा दिया जाता है तथा दबी हुई वस्तु निकल नहीं पाती और बोझ के तले दबे हुए होने के कारण दुर्बल पड़ जाती है एवं अपनी शक्ति क्षीण करवाती है, ठीक इसी प्रकार पुराने संस्कारों का भुगतान काल रोकने के लिए नवीन विपरीत संस्कारों का (जो बुरे संस्कारों का फल सामने आने से रोके, ऐसे शुभ संस्कार) चक्र चला देना चाहिये ताकि पुराने संस्कार का फलोदित होने का समय आ ही ना पाये और चित्त में पड़े–पड़े ये संस्कार दुर्बल और शक्तिहीन हो जायें तथा अपना अस्तित्व खो बैठें। यह सब क्रिया किस प्रकार की जाती है, इस लेख में क्रमशः वर्णन किया जायेगा।

क्या मनुष्य निजकृत-कर्म-संस्कारों से ही प्रभावित होता है ?- प्रायः यह ही कहा व सुना जा है कि मनुष्य जैसे कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। इस मत में सभी शास्त्रीय सिद्धान्त इस कथ की पुष्टि भी करते हैं। परन्तु गहराई से देखा जाये तो कुछ पाप–पुण्य का फल उसे बिना किये क का भी भोगना पड़ जाता है। इस विषय को बाद में स्पष्ट किया जायेगा इससे पहले यह बात बता नितान्त आवश्यक है कि मनुष्य जिन कर्मों के द्वारा अपने पाप–पुण्य जनिज संस्कार चक्र को ब चुका है वे अक्षुण्ण है, वे सभी कर्म किन बातों से तथा क्यों प्रेरित होते हैं ? कभी–कभी ऐसा भी होता कि मनुष्य कुछ प्रकार के कर्म करना भी नहीं चाहता क्योंकि उसकी प्रवृत्ति उस प्रकार की नहीं फिर भी अपनी प्रकृति विरुद्ध वह उन कर्मों को कर बैठता है। अध्ययन से पता चलता है कि चित्त पड़े कुछ संस्कार समय पाकर उभर आते हैं और स्वभाव में परिवर्तन करके अपनी प्रकृति विरुद्ध हो हुए भी मनुष्य से कर्म हो जाता है। अतः मनुष्य के अधिकांश कर्मों के प्रेरणा स्रोत उसके संस्कार हो हैं। कभी–कभी दूसरों के संस्कारों से भी मनुष्य प्रभावित हो जाता है। फिर भी लगभग मनुष्य द प्रकार के संस्कारों से प्रेरित अथवा प्रभावित होकर कर्म करके नवीन संस्कार उत्पन्न करता है। दस प्रकार के संस्कार इस प्रकार हैं–

(१) गर्भ के समय के संस्कार
(२) माता–पिता व पूर्वजों के संस्कार
(३) विद्या के संस्कार
(४) मित्र मण्डली के संस्कार
(५) अन्न–जल के संस्कार
(६) भूमि के संस्कार
(७) पति अथवा पत्नी के संस्कार
(८) पूर्व कृत कर्म के संस्कार
(९) साधना अथवा स्वाध्याय के संस्कार
(१०) राग–द्वेष (बैरभाव व प्रेम भाव) के संस्कार

उपर्युक्त दस प्रकार के संस्कारों का मनुष्य के स्वभाव व व्यवहार पर अमिट प्रभाव पड़ता है अतः एक–एक कदम सही दिशा में रखने के लिए हमें हर तरफ से सचेत होना होगा ताकि हमा संस्कार खराब न हों और हम स्वयं भी दूसरों का जीवन बिगाड़ने में उनके संस्कार खराब करने दोषी न बने। मनुष्य अपने कर्म से अपना ही जीवन बनाता व बिगाड़ता नहीं है अपितु हमारे अनेक कर्म कई जीवन बनाते–बिगाड़ते हैं। मिश्रित स्वभावों का अंश विद्यमान होने के कारण हमारे बहुत से कर्म बिगड़ते हैं और दूसरों के भी कर्म बिगाड़ने में प्रेरणा स्त्रोत बनते हैं। इसका एक छोटा सा उदाहरण है–

महाराजा रणजीत सिंह ने अपने राज्य के चारों ओर एक परकोटा (चार दिवारी) बनवा रखा था एक दिन की बात है कि परकोटे के बाहर खेतों–खलिहानों में भ्रमण करती हुए एक गाय परकोटे के

करीब आ गयी। परकोटे की एक–दो ईंटें टूटकर एक जगह एक झरोखा सा बना हुआ था। गाय ने झटके के साथ उस झरोखे में सींग को आगे करके अपनी गर्दन अन्दर को कर दी परन्तु गर्दन इस प्रकार फँस गयी कि बार–बार प्रयत्न करने पर निकल न सकी। एक प्रहरी ने दरबार में आकर महाराजा को यह सूचना दी तथा पूछा कि दीवार को थोड़ा सा तोड़ने की अनुमति दें ताकि गाय की तकलीफ दूर हो। महाराजा रणजीत सिंह ने तुरन्त आज्ञा दी कि दीवार की ईंटें तोड़ोगे फिर चिनोगे इससे अच्छा कि गाय की गर्दन ही काट दी जाये ताकि अन्य चरवाहे परकोटे के पास गाय–भैंस न आने दें। मंत्री महोदय भी उस सभासद में राजा के पास बैठे थे। राजा के इस क्रूर निर्णय पर उनकी आँखें विस्मय के कारण फैल गयी। जिस समय प्रहरी सभागार से बाहर निकलने लगा तो मंत्री जी चुपचाप किसी बहाने बाहर आये और तेजी से कदम बढ़ाते हुए प्रहरी के पास जाकर बोले कि राजाज्ञा से तुम गाय की गर्दन मत काटना। दीवार को तोड़कर ही गाय को मुक्त करना। कुछ समय बाद राजा को किये फैसले का पछतावा अवश्य होगा परन्तु जब चिड़िया खेत चुग जाती है तो पछताने से कोई लाभ नहीं होगा। अभी चिड़ियों ने खेत नहीं चुगा अर्थात् बाजी व समय हमारे हाथ में है। गलत निर्णय पर खाली पछतावा ही हो, काम नेक हो जाये तो दोष का भागी नहीं बनना पड़ता। अतः तुम मेरी बात अवश्य मानना मैं राजा को उनकी गलती का अहसास कराऊँगा परन्तु तुम गलती मत करना। गाय को बिना नुकसान मुक्त करो। दीवार का नुकसान मामूली बात है। प्रहरी ने जाकर ऐसा ही किया व गाय मुक्त करके दीवार की मरम्मत कर दी गयी। इधर प्रहरी को इस प्रकार की आज्ञा देकर मंत्री के कदम आगे नहीं बढ़ पा रहे थे कि क्या कारण हो सकता है इस हिंसावादी निर्णय का? महाराजा रणजीत सिंह तो बहुत ही उदार हृदय हैं, दयावान हैं, गाय के पुजारी हैं, धर्मनिपुण हैं, नीति–प्रवीण हैं फिर इतने बड़े पाप के पक्ष में कैसे एक पल में निर्णय कर दिया? इसी गहन चिन्तन में डूबे हुए मंत्री जी इस निर्णय पर पहुँचे कि अवश्य ही इस निर्णय के पीछे कोई अतीत का संस्कार है जो वर्तमान में पापकर्म का प्रेरक बन गया। कुछ समय के पश्चात किसी काम से मंत्री जी राजमहल में गये परन्तु उनकी आँखें कुछ खोज रही थी। महाराज की माता श्री से भेंट की। मंत्री जी बहुत मर्मज्ञ थे। उन्होंने महाराजा की माता जी से दीवार वाली बात बता दी कि ऐसा निर्णय लिया ही क्यूं? महाराज के जन्मकाल व अपने भी बाल्यकाल की घटनाओं का उल्लेख करने की विनय मंत्रीजी ने माता जी से की। माता जी ने अपने बालकाल की घटना का उल्लेख करते–करते फिर विवाह व महाराजा रणजीत के गर्भ में आने के समय–स्थान आदि का वर्णन करते हुए बताया कि जब रणजीत सिंह गर्भ में था तो मैं एक तंग गली वाले मकान में रहती थी। घर के पास एक अहाता (पशु–वधगृह) था। उस अहाते की दीवारें अधिक ऊँची नहीं थी। कसाई लोग वहाँ गाय लाया करते थे और मैं उन्हें कटते हुए देखा करती थी। जिस समय गाय काटी जाती थी तो खून ही खून हो जाता था। मैं प्रतिदिन छत पर चढ़कर ये दृश्य देखा करती थी। कुछ दिन बाद हमने वह मकान छोड़ दिया और दूसरी जगह आकर रहने लगे। उसके बाद की घटनाओं का उल्लेख भी माता जी करती जा रही थी परन्तु मंत्री जी ने रोक दिया कि बस माता जी मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया।

मंत्री जी ने माता जी को बताया कि घृणित कार्य होने पर भी उस दृश्य को आप देखा करती थी बस यही छाप बच्चे के मनःस्थल में अंकित हो गयी और अब धर्मगर्मज्ञ होने पर भी घृणित व निन्दित कार्यों को जानते हुए भी महाराज ने गाय की गर्दन उड़ाने की आज्ञा दे दी, यह बात उसी मस्तिष्क छाप के संस्कार से प्रेरित थी। दृश्य आपने देखा, बच्चा गर्भ में था। कोरे मस्तिष्क पर आप से सम्बन्धित चित्त की छाप बच्चे के चित्त में संस्कार बनाती गयी। अब समय आने पर संस्कार उभर कर सामने आया और वैसा ही कृत्य करवाने लगा जिस कृत्य के दृश्य से जन्मा था। अतः इस घटना से स्पष्ट होता है कि बहुत से कार्य अपनी चित्त वृत्ति का परिणाम नहीं होते अर्थात् अपने कर्म का अदृष्ट रूप नहीं होते बल्कि दूसरे के चित्त परिणाम स्वरूप भी होते हैं। हमारे शरीर का निर्माण हमारे माता–पिता की धातुओं से मिलकर हुआ है।अतः हमारे खून में हमारे पूर्वजों का खून तथा चित्त में पूर्वजों की चित्त वृत्तियाँ संयोजित होने का स्वभाव सहज कर्म है जो कि बच्चे में स्वयं आ जाते हैं। बच्चा नहीं चाहता कि गर्भावस्था में माँ कर्म बिगाड़े परन्तु ऐसा होता है तो बिगड़ी चालकर्म के संस्कार बच्चे के चित्त में भी घर करेंगे तभी तो कहा है कि एक व्यक्ति आने वाले (अपनी पीढ़ी में) कई व्यक्तियों का निर्माण करने में अच्छी या बुरी नींव डालता है। अनेक ईंटों को मिलाकर एक कमरा बनता है, इसी प्रकार अनेक चित्तों की वृत्तियों को मिलाकर चित्त निर्माण होता है। यही कारण है कि परमात्मा योगभ्रष्ट साधकों को पवित्र श्रीमानों तथा योगियों के कुल में पैदा करता है ताकि जन्म के समय (गर्भकाल) में जनक–जननी की पवित्र चित्तवृत्तियाँ ही साधक के नवचित्त में मिश्रित हों तथा पवित्र संस्कारों से युक्त पूर्वजों की धातु में संयोजित पवित्र योगयुक्त प्रकाशपूर्ण संस्कार ही साधक को थाती में मिलें और जन्म पश्चात् पवित्र आत्मीय श्रीमान ही शुभ संस्कारित वातावरण में साधक शिशु को पल्लवित करें जिससे पूर्वजन्म की साधना विकसित करने में गलत संस्कार आड़े आकर साधना में विक्षेप पैदा न करें।

क्रमशः

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।।

(श्रीमद्भागवत ११/१४/१६)

भगवान श्रीकृष्ण उद्धवजी से कहते हैं–जिसे किसी की अपेक्षा नहीं, जो जगत के चिन्तन से सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन–चिन्तन में तल्लीन रहता है और किसी के प्रति राग–द्वेष न रखकर सबके प्रति समान दृष्टि रखता है, उस महात्मा के पीछे–पीछे मैं निरन्तर यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणों की धूलि उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाये और मैं पवित्र हो जाऊँ।

श्री गुरुदेव की कृपा लीलाएँ

प्रेषक:– केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

श्री गुरुवर संकल्प से ट्रेन रुकी

उत्तर प्रदेश अन्तर्गत बलिया जिले से पधारे एक दम्पत्ति जो हमारे गुरुभाई बहन हैं, कानपुर मण्डल द्वारा मनाये जाने वाले योग ध्यान शिविर में पूरे समय उपस्थित रहकर उसका लाभ उठाने आये थे, जो दिनांक आठ नवम्बर से ग्यारह नवम्बर दो हजार एक तक कानपुर के आई०आई०टी० के कम्यूनिटी सेन्टर में खूब प्रेम, उत्साह एवं श्रद्धा से मनाया गया। यह कार्यक्रम आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा ही आनन्दप्रद एवं प्रेरणादायक रहा। आध्यात्मिक योग ध्यान शिविर का आयोजन यद्यपि आराध्यदेव जी एवं दादा गुरुदेव परम योग योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज की सामूहिक आरती एवं उसके पश्चात विशाल भण्डारे के बाद समाप्ति की घोषणा की गयी थी तथापि बाहर से आने वाले गुरु भाई बहनों एवं कानपुर मण्डल के उस स्थल पर रात्रि निवास करने वाले आदरणीय भाई बहनों की श्रद्धायुक्त योग जिज्ञासु भावना के कारण रात्रि जागरण कर पूरी रात श्री प्रभुजी की कृपा लीलाओं के वर्णन, भगवान श्री कृष्ण एवं शिव के भजनों, एवं अपने योगेश्वर द्वय की योगयुक्त भजन कीर्तन के साथ चलता रहा, जो प्रातः काल पाँच बजे की आरती के बाद श्री बारह नवम्बर को समाप्त हुआ। इसके पश्चात बलिया जिले के निवासी उपरोक्त दम्पति (जिनका नाम उन लोगों की इच्छानुसार लिखने की मनाही है।) कानपुर सेन्ट्रल रेवले स्टेशन पहुँच गये। उनकी इच्छा यह थी कि कानपुर के प्रोग्राम के बाद सँवाई धाम जाकर श्री सिद्ध गुफा का दर्शन करें एवं उसकी रज को सिर पर चढ़ाये तथा उसके बाद अपने निवास स्थान की यात्रा आरम्भ करें।

उस दम्पति ने कानपुर रेलवे बुकिंग से मेल गाड़ी का टुण्डला जंक्शन जाने का टिकट खरीद लिया। टिकट खरीदते समय बुकिंग क्लर्क ने पूछा कि किस गाड़ी से यात्रा करनी है तो उन लोगों ने बतलाया कि जो भी ट्रेन जाने लायक उचित हो आप बतलाने का कष्ट करें। उसने कहा कि गोरखनाथ एक्सप्रेस अभी अभी आयी है और यहाँ मात्र दस मिनट रुककर दिल्ली के लिए प्रस्थान करेगी एवं टुण्डला जंक्शन से पूर्व कहीं नहीं रुकेगी। आप उसी से यात्रा करें।

उसकी बात मानकर ये दम्पति तेजी से चलकर सीढ़ियों द्वारा प्लेटफार्म नवम्बर दो पर खड़ी गोरखनाथ एक्सप्रेस ट्रेन में बैठकर श्री सँवाई धाम जाने हेतु टुण्डला जंक्शन की यात्रा आरम्भ किये। इन लोगों के साथ तीन गुरुभाई और उसी डिब्बे में साथ ही सवार हुये जिसमें से दो दिल्ली के निवासी थे एवं एक श्री अलीपुर धाम से आये थे। इन तीनों भाइयों को दिल्ली जाना था। इन लोगों के डिब्बे में सवार होते ही ट्रेन ने चलना आरम्भ कर दिया। ये हमारे सभी गुरुभाई बहन जब यात्रा आरम्भ किये उसी समय से श्री प्रभु जी की लीला एवं कृपा चरित्रों के विषय में चर्चा करना आरम्भ किये जो टुण्डला जंक्शन तक चलती रही। टुण्डला जंक्शन पर इस दम्पति को उतरना था अतः ये लोग उतरने की तैयारी करने लगे एवं बाकी तीनों गुरुभाई इन लोगों को पहुँचाने आने की नियत से गेट

पर आ गये। परन्तु गोरखनाथ मेल ट्रेन टुण्डला स्टेशन पर रुकी ही नहीं, वह अपनी निर्धारित गति से चलती हुयी स्टेशन का आउटर सिग्नल पार कर गयी। यह देखकर उस डिब्बे में उपस्थित अन्य मुसाफिरों ने कहा कि यहाँ इस ट्रेन का स्टापेज नहीं है। यह गोरखनाथ मेल ट्रेन कानपुर स्टेशन से खुलने के बाद सीधे दिल्ली स्टेशन पर ही रुकती है। यह सुनकर हमारे आदरणीय दम्पति किंकर्त्तव्यविमूढ़ एवं अवाक् रह गये। दम्पति ने बतलाया कि बुकिंग क्लर्क अठारह बीस साल का लग रहा था एवं शायद उसकी नौकरी की शुरुआत ही यहीं से हुयी थी, अतः उससे यह गलती हो गयी कि उसने उपरोक्त ट्रेन से टुण्डला का टिकट भी दे दिया एवं उसी ट्रेन से यात्रा करने का परामर्श भी दे दिया। उसने तो अपनी समझ से अच्छा ही कार्य किया था, परन्तु परिणाम गलत हो गया।

कारण चाहे जो भी हो हमारे श्रद्धा भाव वाले ये आदरणीय दम्पति संकट में फँस गये। उन्होंने अपनी यात्रा भर का पैसा रखकर बाकी रुपया कानपुर प्रोग्राम में दान कर दिया था। आज बारह नवम्बर की तारीख थी। वे बारह नवम्बर को श्री सिद्ध गुफा का दर्शन कर सायंकाल टुण्डला से यात्रा आरम्भ करते एवं तेरह नवम्बर की रात्रि तक या चौदह नवम्बर को जिस दिन दिवाली पड़ी थी, उस दिन प्रातः काल तक अपने घर पहुँचना चाहते थे। वे सोचने लगे कि अब तो सब कार्यक्रम चौपट हो जायेगा। इन्हीं आतुर परिस्थितियों में उन्होंने मन ही मन तीव्र संवेग से श्री गुरुदेव को याद किया एवं दोनों की आँखे छलछला गयी। विलक्षण एवं महान आश्चर्य जनक घटना घट गयी। गोरखनाथ मेल जिसे कानपुर से छूटने के बाद दिल्ली ही रुकना था हड़बड़–हड़बड़ की आवाज करके यकायक रुक गयी। ये दम्पति तो सुध बुध खो बैठे थे परन्तु दिल्ली जाने वाले गुरु भाइयों ने इन्हें होश दिलाकर इनका सामान ट्रेन से नीचे उतारा एवं उसके बाद ये दम्पति भी ट्रेन से नीचे उतर गये। इनके ट्रेन से नीचे उतरते ही गोरखनाथ मेल ट्रेन जिस आवाज के साथ रुकी थी उसी आवाज के साथ चलना आरम्भ हो गयी। जिस स्थान पर ट्रेन रुकी वह स्थान टुण्डला से करीब पाँच किलोमीटर आगे है। ये दम्पति ट्रेन चले जाने के बाद सोचने लगे कि अब आश्रम सँवाई धाम कैसे चला जाय। उनके रेल लाइन से मात्र पचास फीट (करीब पन्द्रह सोलह मीटर) की दूरी पर पीच रोड (डामर रोड) दिखलायी दी। वे अपने सामानों के साथ उस रोड पर चले गये एवं किनारे खड़े हो गये। अब तक हमारे आदरणीय दम्पति को पता नहीं था कि उनको रोड पर किधर जाना है एवं यह कौन सी रोड है, कहाँ से कहाँ को जाती है?

अभी ये लोग सड़क पर पहुँचकर सोच ही रहे थे कि कोई मिले तो उससे सँवाई धाम जाने के रास्ते की जानकारी की जाय, इतने में एक महानगर बस (सिटी बस) आती हुयी इन्हें दिखायी दी। बस जब करीब आ गयी तो इन्होंने हाथ उठाया एवं बस रुक गयी। बस के रुकने के बाद इन्होंने कन्डक्टर से पूछा कि बस कहाँ जा रही है, उसने बतलाया कि एतमादपुर जा रही है। ये दम्पति उस बस में बैठ गये। इन लोगों ने पता किया कि किस रास्ते से होकर यह एतमादपुर पहुँचेगी, तो कन्डक्टर ने बतलाया कि मितावली, सँवाई गाँव होते हुए एतमादपुर जायेगी। ये दम्पति एतमादपुर का

टिकट लिये थे एवं कन्डक्टर से अनुरोध किये कि हम लोगों को श्री सिद्ध गुफा पर जाना है, उसके सामने उतार देना। कन्डक्टर ने कहा कि आप लोग गेट पर आ जाइये, श्री सिद्ध गुफा आने ही वाली है। इस समय दिन के साढ़े दस बज रहे थे। इसके बाद ये दम्पति श्री सिद्ध गुफा के ठीक सामने सड़क पर उतरे। उसके बाद आश्रम में अपना सामान रखकर हाथ पैर धोकर श्री सिद्ध गुफा का दर्शन किये एवं गुफा में काफी समय तक अश्रुपूरित नेत्रों तथा आह्लादित मन से अर्चन वन्दन चिन्तन करते रहे। चूंकि ये दम्पति अनभिज्ञ रास्ते से आये थे अतः एत्मादपुर से फलाहारी मिष्ठान लाकर प्रभु को अर्पित कर ब्रह्मचारी गणों एवं उपस्थित प्रभु भक्तों के बीच वितरित किये। तदनन्तर बारह बजे के करीब भोजन करने के लिए घंटी बजी, अतः आप लोगों ने अन्य भाई बहनों के साथ प्रसाद ग्रहण किया एवं करीब सायं चार बजे तक आश्रम पर निवास किये। उसके बाद श्री सिद्ध गुफा को , योगेश्वर द्वय के दिव्य स्वरूपों को आप लोगों ने साष्टांग प्रणाम किया एवं फिर सबसे जय गुरुदेव करते हुए अपने घर की यात्रा आरम्भ किये एवं टुण्डला–कानपुर–इलाहाबाद होते हुए दिनांक तेरह नवम्बर को दीपावली से एक दिन पूर्व ही अपने निवास स्थान (घर) पहुँच गये।

इस संबंध में यह बताना प्रासंगिक होता है कि हमारे ये आदरणीय गुरुभाई बहन यदि टुण्डला होकर आते तो गोरखनाथ मेल ट्रेन करीब सवा दस बजे टुण्डला स्टेशन से गुजरी है। वह साढ़े दस बजे टुण्डला जंक्शन पर इस गाड़ी के रुकने पर उतरते, फिर वहाँ से सीढ़ियों द्वारा बाहर आते, वहाँ से टुण्डला चौराहा सवारी से आते, सवारी बदल कर फिर एत्मादपुर आते एवं वहाँ से फिर तीसरा साधन करके या पैदल श्री सँवाई धाम पहुँचते और इस प्रकार साढ़े बारह या दिन में एक बजे के लगभग का समय अवश्य ही होता। जबकि ये लोग करीब पौने ग्यारह बजे श्री सँवाई धाम पर पहुँच गये थे। दूसरी समस्या थी कि मान लिया जाय कि ट्रेन जहाँ रूकी थी वहाँ से सड़क दूर होती एवं जाने का साधन वहाँ नहीं होता तो मात्र सड़क तक पहुँचने में कई घंटे का समय लग जाता। इस प्रकार ये लोग सायंकाल या रात्रि तक श्री सिद्ध गुफा सँवाई पहुँचते एवं उनके दिपावली से पूर्व घर पहुँचने का कार्यक्रम असफल हो जाता।

धन्य है ऐसे श्रद्धा सम्पन्न दम्पत्ति रूप में हमारे आदरणीय गुरुभाई बहन एवं धन्य है आनन्दकन्द परम करुणेश्वर श्री सद्‌गुरुदेव भगवान की वात्सल्यता। ऐसी ही कृपाओं का स्मरण एवं चिन्तन कर हमारे किसी गुरुभक्त भाई ने लिखा है:–

गुरुदेव के प्यारे बच्चों को, पग-पग पै सहारा मिलता है।
तुम इधर हटो, तुम उधर बढ़ो, यह आप इशारा मिलता है।।

श्री पोखपाल परिवार पर गुरुवर कृपा

आनन्दकन्द श्री सद्‌गुरुदेव जी महाराज के चरण कमलों में अपार श्रद्धा रखने वाले एक दम्पति है। जिनका नाम श्री पोखपाल जी एवं उनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती कश्मीरी देवी है। ये भाग्यवान दम्पत्ति ग्राम तैयबपुर कोठी, डाकखाना वितराम जिला एटा के निवासी हैं। इनकी अपने गुरुदेव भगवान के चरण कमलों में अनन्य निष्ठा का ही फल है कि इस परिवार पर भगवान की कृपायें सदा

कदा होती ही रहती है और इन कृपाओं से ये दम्पत्ति एवं यहाँ की धरती ओत प्रोत है। मन पर अमिट प्रभाव डालने वाली इस परिवार पर घटित कुछ प्रेरणादायक कृपाओं का वर्णन निम्नांकित है–

प्रथम

तेइस जून सन् उन्नीस सौ निन्यानवे के अपराहन चार बजे सायं का समय था। भाई श्री पोखरपाल जी अपनी अर्धांगिनी श्री मती कश्मीरी देवी को गुरुदेव का कृपा चरित्र सुना रहे थे। श्री महादेव नामक व्यक्ति जो पड़ोसी गाँव नगला छत्ता का निवासी था दौड़ा–दौड़ा वहाँ आ पहुँचा एवं दम्पत्ति के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा कि हमारा ट्रैक्टर जिस पर लकड़ी लदी है, अरबी के गीले खेत में बेतुका फँस गया है। उसे निकालने के लिये उसके आगे दो ट्रैक्टर लगाकर खींचा जा रहा है परन्तु लकड़ी से लदा वह ट्रैक्टर निकलने की बजाय और फँसता एवं धंसता ही जा रहा है और उसके गीले खेत से निकलने की सभी संभावनाएं अब समाप्त हो गयी हैं। कृपया आप हमारे साथ चलें एवं प्रभु से किसी प्रकार प्रार्थना करके हमारे लकड़ी लदे ट्रैक्टर को निकलवाने की कृपा की जाय। पहले तो पोखपाल जी ने इन्कार कर दिया कि यह सब कार्य हम नहीं करते। परन्तु महादेव द्वारा विलाप करने एवं यह कहने पर कि भाई साहब हमारा कई हजारों का नुकसान हो जायेगा एवं हमारा व्यापार ही चौपट हो जायेगा, श्रीमती कश्मीरी देवी को दया आ गयी एवं उन्होंने अपने पतिदेव से प्रार्थना किया कि करूणासागर श्री प्रभु जी से प्रार्थना करके इस बेचारे का व्यापार चौपट होने से बचा लीजिये, रोजी रोटी का सवाल है। यदि आपने श्री प्रभु जी से प्रार्थना करके यह उपकार नहीं किया तो इसके परिवार का भरण पोषण मुश्किल ही है। धर्मपत्नी की उपरोक्त विनीत भाव से किये गये आग्रह को सुनकर आखिर श्री पोखपाल जी कृपा सागर श्री प्रभु जी की अहैतुकी कृपाओं को याद करते हुए श्री महादेव के साथ उस खेत में गये जहाँ ट्रैक्टर खेत में फँसा हुआ था।

उस स्थान पर पहुँचकर श्री पोखपाल जी ने देखा कि लकड़ी से भरे ट्रैक्टर के अगले पहिये करीब आधे–कीचड़ में धंसे हुये हैं तथा पिछले बड़े पहिये एक तिहाई– कीचड़ में धंसे हैं। उसमें जोड़ी गयी ट्राली पूरी तरह से ऊपर तक भरी थी उसके पहिये करीब आधे–भाग तक कीचड़ में दबे हुए हैं। उसको निकालने के लिए पहले एक ट्रैक्टर लगाकर प्रयत्न किया गया एवं जब उससे नहीं निकला तो एक और ट्रैक्टर लगाकर निकालने का प्रयास किया गया था। दोनों ट्रैक्टर उसे आगे निकालने का प्रयास कर रहे थे एवं उपस्थित जन समुदाय फँसे ट्रैक्टर को आगे बढ़ने के लिए पीछे से जोर लगा रहा था परन्तु कोई लाभ नहीं था। फँसे हुए ट्रैक्टर के पास पहुँचकर श्री पोखपाल जी खड़े–खड़े आँख बन्द कर श्री प्रभु का मानसिक पूजन एवं चिन्तन किये। उस समय उन्हें गुरुदेव की वाणी स्पष्ट सुनायी दी। साथ ही गुरुदेव ने कुछ आदेश पोखपाल जी को दिये। इस कार्यक्रम में करीब पन्द्रह मिनट का समय व्यतीत हो गया। इसके बाद भाई श्री पोखपाल जी ने मन ही मन गुरुदेव भगवान को साष्टांग प्रणाम किया एवं अपनी आखें खोलते हुए कहा कि दोनों ट्रैक्टरों को (जो फँसे हुए ट्रैक्टर को निकालने के लिए लगाये गये थे) निकाल कर बाहर कर दीजिये। ट्रैक्टर बाहर निकल जाने के बाद आपने वहाँ उपस्थित जन समुदाय को वहाँ से थोड़ी दूर हटा दिया एवं फिर लकड़ी

लदे, फँसे ट्रैक्टर पर उसके ड्राइवर को बैठाया। उपस्थितजन समुदाय से कहा कि जब मैं श्री गुरुदेव भगवान का जयकारा करूँ तो आप लोग जोर से जयकारा लगाइयेगा। ट्रैक्टर ड्राइवर को आदेश दिया कि उसी जयकारे में तुम भगवान का नाम लेकर ट्रैक्टर चालू करना, ट्रैक्टर निकल जायेगा। श्री पोखपाल जी ने श्री सद्गुरुदेव भगवान की जै, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जै लगवायी, बड़ी ऊँची आवाज में लोगों ने जैकारा लगाया, ड्राइवर द्वारा प्रयास करने पर ट्रैक्टर निकल कर बाहर आ गया। अब चारों तरफ प्रसन्नता का वातावरण बन चुका था। उपस्थित सभी समुदाय श्री पोखपाल जी के गुरुवर द्वय (सद्गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज) की अतुलित शक्ति एवं अहेतुकी कृपाओं का वर्णन एक दूसरे से बार–बार अश्रुपूरित नेत्रों से कर रहे थे। जब श्री पोखपाल जी से लोग उनकी प्रशंसा करते तो श्री पोखपाल जी कहते फिरे–

श्री गुरुदेव की कृपा से, सब कार्य हो रहा है।
करता है गुरुवर दानी, मेरा नाम हो रहा है।।

(क्रमशः)

भजन

भूपेन्द्र 'अंकुश' जलेसर

जय जय गुरुदेव दया करिये।
यदि गलती हो तो क्षमा करिये।।टेक।।
निज वरदहस्त रख सिर मेरे।
खुशियों के सद्गुरुतान डेरे।।
मोय भार दबाये जाता है;
त्रय–ताप–बजन हलका करिये।।१।। जय———
पाहन, पशु, तरु, खग, नर, वानर।
तब दया–दृष्टि से उबारा हर।।
वे पार किये ; क्य बात बने?
भव पर सकल वसुध करिये।।२।।जय———
तामस की धूप जलाती है।
अन्तस् की जड़ कुम्हिलाती है।
कुछ बूँदों से, कुछ घूँटों से,
अब तृप्ति नहीं ; बरषा करिये।।३।। जय———
तव चरणों में मम प्रीति रहे।
सेवा, अनुराग, प्रीति रहे।।
अब लहर उठे तो हे सद्गुरु!
सौभाग्य मेरा पहला करिये।।४।। जय———

सिद्धयोग में एकाग्रतायुक्त ध्यान

—स्वामी मुक्तानंदजी महाराज

सिद्धयोग में अपने इष्ट के एकाग्रतायुक्त ध्यान का महान स्थान है। परम गुरु ने अन्तरशक्ति जगाई, मन्त्र बताया, आसन सिखाया। अब शांति से सूर्योदय से पूर्व उठकर स्नान करके ध्यान करो। पूर्व दिशा की ओर मुख करके, या जो भी दिशा है, उसको ध्यान की ही समझकर, शांत होकर, आसनस्थ बैठ जाओ। याद, करो उस पारमेश्वरी अनुग्रहिका शक्ति को। याद करो मन्त्र को। अन्दर जाते हुए और बाहर आते हुए प्राण के साथ मन्त्र जोड़कर जप करो। चित्त को मन्त्र में मन्त्रमय बनाओ। मन यदि इधर–उधर को दौड़ने लगे, तो उसे लौटाकर ध्यान में लगा दो। तुमको एक और उत्तम प्रक्रिया बताऊँ क्या ? सुनो ! पतंजलि ऋषि का एक सूत्र है— **वीतरागविषयं वा चित्तम्।** अपने चित्त को अपने प्यारे गुरु के ध्यान में लगाओ। यह सिद्धयोग या कुण्डलिनी महायोग का प्राण है। ध्यानयोग का रहस्य है। आत्मलाभ की गुरु–कुंजी है।

मानव जिस–जिस का ध्यान करता है उस–उस के अनुरूप बनता है। जिस वस्तु को वह हृदय में प्रेम से धारण करता है, उसी वस्तु–सा वह बन जाता है। सिद्धगुरुजनों का ध्यान बहुत सुलभ है, क्योंकि एक तो हम लोग श्री गुरु के नख से शिखा तक पूर्ण परिचित होते हैं। हम अपने प्यारे गुरु से बार–बार मिल चुके होते हैं। उनके साथ फिर घुके होते हैं ! उनसे अनेक विधि–विधानों को सुन चुके होते हैं। कुछ मस्ती भरी यौगिक क्रियाएँ, उच्च तत्वज्ञान की बातें, नानाविध और विचित्र साधनों का ज्ञान, अनेकानेक संतमहात्माओं के चरित्र हम श्री गुरु से श्रवण करते हैं। यह सब जो–जो भी हमारी मानसिक क्षेत्र की सृष्टि में है वह पूरा–पूरा स्मरण करने या कभी–कभी स्मरण न करने पर भी हमारे सामने आ जाता है, यह सभी का अनुभव है।

एक बार एक नवयुवक मेरे पास आया और बोला, "बाबाजी, मैं बहुत परेशान हूँ। मेरा समाधान कीजिए। बात यह है कि मेरा एक युवती से प्रेम हो गया। हमने परस्पर एक दूसरे को पसन्द किया और विवाह करने का निश्चय कर लिया। परन्तु शादी की बात ठहरते–ठहरते बिगड़ गयी। उस लड़की ने इसी बीच किसी और को पसन्द कर लिया और उससे शादी कर ली। इस कारण से बाबाजी मैं बहुत कष्ट में हूँ। अपनी वेदना मुझसे सही नहीं जाती।"

मैंने कहा, "अरे, इसमें शोक की क्या बात है ? तुम भी कोई दूसरी लड़की देख लो और उससे शादी कर लो।"

वह बोला, "यह तो ठीक है, परन्तु वह लड़की मेरे मन में इतनी बैठ गयी है कि निकालने के लाख प्रयास करने पर भी वह नहीं निकलती।"

मैंने पूछा, "तुम उसकी याद क्यों करते हो ?"

उसने कहा, "याद मैं थोड़े ही करता हूँ। स्वयं ही उसका स्मरण चित्त में आ जाता है। अपने आप ही उसकी मूर्ति मेरी आँखों के सामने घूमने लगती है।"

अहा ! क्या बात बताई। उसने उस लड़की का विधि–विधान से दीर्घकाल तक अनुष्ठान नहीं

किया था। प्रत्येक अंग के बीजमन्त्र को लेकर उसका ध्यान नहीं किया था। न किसी उच्च स्तर के सिद्धमहात्मा से उस लड़की के नाम का कोई मन्त्र लिया था। फिर भी उसका चित्र युवक के मन से नहीं निकलता! निकालने का उपाय पूछने के लिए बाबाजी के पास आता है। देखा, संगति का कैसा परिणाम है? जब हम किसी को प्रेम से हृदय में बिठाते हैं तब वह निकालने से भी नहीं निकलता। 'मन से निकल जाओ' ऐसा कहने पर भी नहीं जाता। प्रेम युक्त ध्यान का ऐसा फल होता है। तो फिर तुम अपने गुरुदेव को क्यों नहीं इसी भाँति प्रेम से ध्याते? उनके एक ही बार तुम्हारे अन्तःकरण में प्रवेश करने से वे मूर्ति बनकर वहीं बैठ जायेंगे। फिर निकालने से भी नहीं निकलेंगे।

जगत के सारे सांसारिक जन यही गीत रात–दिन गाते हैं, "बाबाजी, मैं ध्यान में बैठने का प्रयास करता हूँ। पर बैठते ही वही संसार की बातें सामने आ जाती हैं। वही ऑफिस, वही फैक्टरी, वही बाल बच्चे। क्या करूँ, बहुत परेशान होता हूँ। ध्यान लगता ही नहीं।"

मैं कहता हूँ, "अरे! ध्यान तो अच्छा लगता है। तुम्हारे ऑफिस का अन्तर में स्फुरण होना ध्यान ही तो है। कारखाने का स्फुरण होना ध्यान का ही एक भाग है। ध्यान में तुमको अपने बाल–बच्चों के भी दर्शन होते हैं। क्या तुमको अपनी साधना का फल पाकर भी समाधान नहीं! तुमने व्यावहारिक जीवन में जो प्यार से साधना की, जिन–जिन चीजों को गले लगाकर प्यार किया, जिस–जिस का चिन्तन किया, वे सब तुमको फल दे रहे हैं। कभी कारखाने के दर्शन, कभी ऑफिस के दर्शन, कभी बालबच्चों के दर्शन होते रहने पर भी तुम इसे ध्यान नहीं समझते! देखो भैया, हमारी ऐसी ही गति है। हमने सद्‌गुरु नित्यानन्द का ध्यान किया। साधना के अंगों से प्यार किया। प्यारे गुरुदेव के चरणों को गले लगाकर चुम्बन किया। अब वह साधन बार–बार हृदय में स्फुरता है। उनको न सोचते हुए भी 'गुरुदेव, गुरुदेव' ऐसा जाप अन्तर में उठता है। अंग–प्रत्यंग में श्री गुरु उमड़ने लगते हैं। स्वप्न में भी वे ही दीखते हैं, उनका ही साक्षात्कार होता है।"

जिस विषय का हम चिन्तन करते हैं उसकी हृदय में स्फुरणा होना ही ध्यान है। जब उस स्फुरणा से स्फुरते–स्फुरते उसकी भी विस्मृति हो जाती है तब वह उच्च स्तर का ध्यान है। इसीलिए शास्त्र हमें परमात्म स्वरूप श्री गुरु का सतत चिन्तन करने का आदेश देते हैं। चित्त को सतत उच्च चिन्तन में लगाओ। श्री गुरु–ध्यान महान अलक्ष्य फल देने वाला है। चित्त चैतन्य बन जाने से तुम परमानन्दमय की दीक्षा पाओगे।

प्यारे जनों! एक बात सोचो। हमारे बड़े–बड़े तत्वनिष्ठ महात्मा सभी को ध्यान में लगने की क्यों प्रेरणा देते रहे हैं? इसका क्या कारण है? इतना समय ध्यान में खर्च करने के लिए क्यों कहते हैं? ऋषियों का कहना ठीक है, यथार्थ है, प्राणीमात्र के मंगल के लिए, सर्वकल्याण के लिए व्यवहार की दिशा में परमार्थ लाने के लिए है। वे जगत में राम, राम में जगत दिखलाते हैं। संसार में सुख पाने का मूल साधन चित्त है। इसी कारण वे ऐसा कहते हैं, 'ध्यान करो। परमेश्वर का ध्यान करो। चित्त चिन्मय है। उसे देखो।'

***

मनुष्य-योनि का परम लक्ष्य

—ऋषिराम शर्मा

(गुरुदेव के चरणों में श्रद्धांजलि)

भगवान् पतंजलि के अनुसार कर्माशय के जो कर्म फल देने के लिए पक जाते हैं उन्हें प्रारब्धकर्म कहते हैं। उन्हीं के प्रभाव से जीवात्मा को योनि की प्राप्ति, उस योनि के द्वारा भोगे जाने वाले विषय–भोग तथा उसकी आयु निर्धारित होती है। इसी कारण शास्त्रों में शरीर को भोगायतन कहा गया है। प्रकृति का यह नियम सभी शरीरधारियों पर लागू होता है। यह प्रारब्ध धनुष से छोड़े हुए बाण की तरह होता है। जो अपने लक्ष्य पर अवश्य जायेगा। इसी कारण ज्ञानियों, अज्ञानियों, भक्तों एवं महात्माओं को भी प्रारब्ध का भुगतान शरीर के द्वारा ही करना पड़ता है। महापुरुषों की सेवा की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि—

प्रारब्धो भोगतो नश्येत् अन्ये ज्ञानेन दह्यन्ते।
इतरे तु शरीरेण तद्द्वेष्टिप्रिय वादिनः।।

अर्थात् महापुरुषों के प्रारब्धकर्म तो शरीर द्वारा भुगतान से नष्ट हो जाते हैं और संचित कर्म ज्ञानाग्नि द्वारा भस्म हो जाते हैं किन्तु शरीर के द्वारा इस जीवन में किये गये सर्वप्राणियों के कल्याण के निमित्त कर्मों का फल उस शरीर की सेवा करने वाले ले लेते हैं। और निन्दक लोग अनजाने में होने वाले पापकर्मों को ले लेते हैं, क्योंकि अहंकाररहित स्थिति में किये गये कर्म उस महापुरुष के लिये तो अकर्म हैं यानि फलदायी नहीं हो सकते। सेवक के मन में सेवा का अहंकार कार्य करता है। अतः वह इस महान पुण्यकर्म का फल ग्रहण करता है। इसी कारण परमात्मा की प्राप्ति के लिए भगवान कृष्ण ने गुप्त रहस्यों का संकेत दिया है कि—

स्वभावजेन तु कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छति यत् मोहात् करिष्ये अवशोऽपि तत्।।
न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोग स्वभावस्तु प्रवर्तते।।
नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेन आवृत ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।

अर्थात् जीवात्मायें अपने प्रारब्धकर्म के फलस्वरूप उत्पन्न गुणों से स्वतः स्वभाव के आधीन होती हैं, यानि सुख–दुःख के फल के अनुकूल गुणात्मक लहरें चित्त में उठती हैं जो उसके अहंकार और बुद्धि को प्रेरित करती हैं और दृश्य जगत भी उन्हीं के अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करता है। और इस प्रकार न चाहते हुए भी प्रारब्ध के वशीभूत कार्य करने पड़ते हैं। जब पुण्यकर्म का फल आता है, तो स्वतः चित्त में आह्लाद उत्पन्न होता है और जब पापकर्म का फल उदय होता है तो चित्त में

स्वतः परिताप यानि दुःख की अनुभूति होती है। यह समझना अज्ञान ही है कि सुख या दुःख किसी घटना के आधीन है, क्योंकि एक ही घटना से कुछ को सुख मिलता है तो कुछ को महान् दुःख। उदाहरण के रूप में WTC की घटना से जहाँ लाखों जीव दुःखी हुए, वहीं उसी घटना से हजारों लोग खुशी से नाच रहे थे। लोग अज्ञानवश अपने जीवन में घटित होने वाली दुःखदायी घटनाओं के लिए परमात्मा को दोष देते हैं। वस्तुतः परमात्मा न तो कर्म करता है और न कराता है और न कर्मों का फल देता है। यह तो अपने ही गुणात्मक स्वभाव से प्रेरित होकर घटित होते हैं। पाप तथा पुण्य और उनके सुख तथा दुःख रूपी फल केवल अज्ञान का परिणाम मात्र है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि अंधकार के कारण रस्सी में उत्पन्न हुई सर्प की भ्रान्ति भय पैदा कर देती। उपरोक्त कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि सभी योनियाँ प्रारब्ध के आधीन हैं, किन्तु यह सत्य नहीं है। मनुष्य–योनि की यह विशेषता है कि वह अपने पुरुषार्थ से प्रारब्ध में भी लचीलापन कर सकती है। और कर्मबन्धन से मुक्ति भी पा सकती है। इसी कारण महर्षि पतंजलि ने दृश्यजगत की उत्पत्ति के दो लक्ष्य बताये हैं। एक तो भोग तथा दूसरा मोक्ष। योगदर्शन में बताया गया है। कि–

प्रकाशस्थितिक्रियाशील, भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्''

अर्थात्–इस त्रिगुणात्मक, पंचभूतात्मक तथा दशान्द्रियात्मक जगत को परमात्मा ने प्रारब्ध के भोगों के लिए तथा परमात्मस्वरूप की प्राप्ति रूप मोक्ष के लिए बनाया है। भोगों का सम्बन्ध कर्माशय से है और कर्माशय का सम्बन्ध पंच क्लेशों से है। यह सम्बन्ध कार्य–कारण का उत्तरोत्तर सम्बन्ध है। उपनिषदों में इसी को माया की विक्षेपशक्ति तथा आवरणशक्ति के रूप में समझाया गया है। मैंने अपने पिछले लेख में पंचक्लेशों को समझाने का प्रयास किया था। यह पंच क्लेश ही माया की आवरणशक्ति है। मनुष्य–योनि में ही जीवात्मा आवरण शक्ति के बन्धन से मुक्त हो सकता है। अन्य योनियों में विवेक, वैराग्य तथा क्रियायोग के साधन सम्भव नहीं हैं। अतः मनुष्य–योनि का परम लक्ष्य है कि इन साधनों के द्वारा मोक्षप्राप्ति करे। यह साधन क्या है और कैसे किये जा सकते हैं, मैं इस पर प्रकाश डालूँगा। भगवान व्यास जी ने भी मोक्षप्राप्ति के लिए साधन चतुष्ट्य की अनिवार्यता को बताया है। यह चार साधन भी विवेक, वैराग्य, यमनियम तथा मुमुक्षा है। यहाँ यह बात साफ है कि यह साधन केवल मनुष्य–योनि में ही संभव हैं, अन्य किसी भी योनि में नही। इसे और स्पष्ट करने के लिए मैं एक दृष्टान्त देता हूँ कि एक अन्धा व्यक्ति एक भयंकर जंगल में भटक जाता है। जंगल की चार दीवारी इतनी ऊँची है कि उसको फाँदकर बाहर निकलना सम्भव नही और बाहर निकलने का केवल एक गेट है। जंगल में विषैले फलवाली कंटीली झाड़ियाँ हैं जो कि अत्यन्त घनी हैं। अन्ध व्यक्ति भूख से व्याकुल है और विषैले फल खाकर सुधबुध भूलकर झाड़ियों में फँसता चला जाता है। जितना भी अपनी मुक्ति का प्रयास करे, किन्तु कोई उपाय नहीं सूझता। भूख सहन करने की सामर्थ्य नहीं है अतः विषैले फल खाते हुए भटक रहा है। उसे चारदीवारी की सड़क मिलती ही नहीं। कभी मिल भी जाती है तो फल खाने की लालसा उसे फिर अन्दर खींच लाती है। सौभाग्यवश कभी गेट तक पहुँच भी जाता है तो दोनों हाथ विषैले फलों की खुजली में व्यस्त रहने के कारण गेट को नही पहचान पाता

है। और वह आगे निकल जाता है और पुनः भयंकर जंगल में भटक जाता है। बस यही दशा अज्ञान से अन्ध जीव की है जो कि संसार रूपी जंगल में चौरासी लाख योनियों की झाड़ियों में फंसा हुआ है और विषय भोग रूपी फल खाता है, तृष्णारूपी विष के कारण अपने स्वरूप को भी भूल गया है। उसे श्रेयमार्ग रूपी सड़क हाथ ही नहीं आती। सौभाग्य से कभी मनुष्ययोनि रूपी गेट मिल भी जाय तो इन्द्रियों के विषयभोग रूपी खुजली खुजाते हुए गेट निकल जाता है और पुनः क्लेश मूलात्मक कर्माशय की दलदल में फँस जाता है।

अतः निश्चय करने की बात यह है कि मनुष्ययोनि ही इस संसार रूपी अरण्य से बाहर निकलने का एकमात्र द्वार है। इस द्वार से बाहर निकलने के लिए विवेक, वैराग्य तथा क्रियायोग के कठिन तथा निरन्तर प्रहार से अज्ञान रूपी गेट को तोड़कर बाहर निकलना होगा। यदि इसे तोड़ने की सामर्थ्य नहीं है तो अनन्य भक्तियोग रूपी चाबी को प्राप्त करने का प्रयत्न करो। एक बात और है कि मनुष्य–योनि में ही परमात्मा ने यह सामर्थ्य दिया है कि वह अपने प्रारब्ध को भी बदल सकता है तथा उसकी दिशा को बदलकर शीघ्र ही परमात्मा का सान्निध्य पा सकता है। जगदात्मा श्री कृष्ण ने गीता में इसका रहस्योद्घाटन किया है। महर्षि पतंजलि के सूत्र **''तीव्र संवेगानामासन्नः''** का गुप्त रहस्य भी यही है कि अगाध श्रद्धा, विश्वास तथा प्रेम के साथ किया हुआ कर्म शीघ्र पककर प्रारब्ध में सम्मिलित हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप प्रारब्ध में परिवर्तन होते हैं, उसका तन्वीकरण हो जाता है। महापुरुषों, योनियों तथा परमात्मा के सम्मुख की गई प्रार्थनायें तथा तपसाधना इसी प्रकार के तीव्र संवेग वाले कर्म हैं। इसमें रहस्य की बात है।

''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजाम्यहम्''।

अर्थात् भगवान कृष्ण की यह उद्घोषणा है कि जो मुझे जिस भाव से भजता है मैं भी उसे उसी भाव से भजता हूँ। इसीलिए तो सुदामा के तीन मुट्ठी चावल के बदले भगवान कृष्ण ने सुदामा को तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्रदान कर दिया। द्रौपदी के एक चावल के दाने को खाकर दुर्वासा जी के सैंकड़ों शिष्यों का पेट भर दिया गया। कलियुग में भी काशी के सिद्धपुरुष तैलंग **स्वामी** जी ने अपने पुण्य देकर एक मृतयुवक को उसकी माता की पुकार पर १० वर्ष का जीवन दान देकर उसके कठिन प्रारब्ध को बदल दिया। प्रारब्ध के अनुसार मार्कण्डेय ऋषि की आयु १६ वर्ष थी किन्तु उनकी अगाध प्रेमभक्ति के परिणामस्वरूप भगवान शिव ने उन्हें अमरता प्रदान कर दी। हमारे महाप्रभु जी ने मानिक लाल दलाल के कठिन रोग के प्रारब्ध को समाप्त कर लम्बा जीवनदान प्रदान किया था।

अपने परम प्रिय भाईयों तथा बहिनों से मैं अपनी बात कहना चाहूँगा कि प्रारब्ध का दुःख मिटाने के लिए अपने आराध्यदेव से कभी प्रार्थना न करें अपितु अपने प्रभु जी की सेवा समझकर प्रसन्नतापूर्वक भोगकर समाप्त करें और इस कठिन समय का अपनी प्रेम भक्ति की वृद्धि में उसका सदुपयोग करें। यही मनुष्ययोनि का परम उद्देश्य है और यही कल्याण का मार्ग है। प्राणिमात्र के परम हितैषी भगवान कृष्ण ने वेदों का सारतत्व गीता में दिया है। कि–

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्परः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसार सागरात्।
भवामि नचिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्।।
मयि मनः आधस्व मयि बुद्धि न संशय।।
अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोसिमयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय।।
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन सिद्धिमवापस्यसि।।
अथैतदपि असमर्थोऽसि कर्तुं मद्योगं ममाश्रितः।
सर्वकर्मफल त्यागं ततो कुरु यतात्मवान्।।

अर्थात् परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ साधन यह है कि अपना तन, मन तथा धन अपने आराध्यदेव के चरणों में इस प्रकार अर्पण कर दो कि प्रत्येक कर्म उनकी सेवा बन जाये। प्रत्येक कर्म का एकमात्र फल उनकी शरणागति, उनके चरणों में अनन्यप्रेम तथा सभी चित्तवृत्तियों में उनका दिव्य स्वरूप ही समा जाय। परमात्मा का यह अमोघ वचन है कि ऐसे अनन्य भक्तों की नौका को इस माया के भवसागर से पार कराने के लिए मैं शीघ्र ही नाविक के रूप में प्रकट हो जाता हूँ। भगवान कृष्ण ने स्वीकार किया है कि जो जीवात्मा अपने मन तथा बुद्धि में उदित एवं क्षय होने वाली सभी वृत्तियों को मेरे स्वरूप में समाहित कर लेते हैं यानि जिनकी सांसारिक कामनायें तथा वासनायें भस्म हो चुकी हैं, जो निर्विचार असम्प्रज्ञात समाधि की योग्यता प्राप्त कर चुका है, वह जीवात्मा मेरे ही विशुद्ध ब्रह्म के स्वरूप में निवास करता है और मुक्त हो जाता है। यदि इस प्रकार की योग्यता प्राप्त नहीं हुई है तो साधना योग के द्वारा इस योग्यता को प्राप्त करने का प्रयास करो। यदि योगसाधना करने में अपने को असमर्थ पाते हो तो सर्वभाव से मेरी भक्ति करो, क्योंकि मेरे भक्त भी मुझे पा जाते हैं, अपने सभी कर्मों को मेरे अर्पण करने वाले भी मेरी कृपा से सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। यदि हृदय में मेरी प्रेम–भक्ति उदय नहीं हुई है और सांसारिक कर्मबन्धन के कारण व्यवहार जगत में उलझे हुए हैं तब संसार का समस्त व्यवहार करते हुए, अपना गृहस्थ जीवन बिताते हुए भी यदि कर्मों के फलों को मन से निकाल दो, यानि कर्मफल का त्याग करो अर्थात किसी भी कर्म की सफलता अथवा असफलता में मन तनिक भी चिन्तित न हो, तब भी जीव परमात्मा के समीप आ जाता है और परम शान्ति पाता है। यहाँ भगवान कृष्ण ने अपनी–अपनी क्षमता के अनुसार परम लक्ष्य प्राप्त करने के उपाय संक्षेप में बता दिये हैं। यह तो स्पष्ट है कि यह उपाय मनुष्य–योनि में ही सम्भव है।

अब मैं अपने भाई–बहिनों को क्रियायोग को समझाना चाहता हूँ जिसके द्वारा इन मोक्ष–साधनों की क्षमता आती है इसके द्वारा अशुद्धि या मलावरण का नाश होने पर ज्ञानदीप्ति की उपलब्धि होती है

और अन्तःकरण में परमात्मतत्व प्रकाशित हो जाता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार क्रियायोग की परिभाषा है कि–

"तपस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः।"

अर्थात्–क्रियायोग के तीन प्रमुख अंग हैं (१) तप (२) स्वाध्याय तथा (३) ईश्वर प्राणिधान। सर्वप्रथम यह समझना है कि तप क्या है और कैसे किया जा सकता है। साधारण भाषा में द्वन्द्वों का समत्वभाव से सहन करना तप है। इस मायिक जगत में द्वन्द्वों का ही चक्रव्यूह है, प्रत्येक जीव राग–द्वेश, सुख–दुःख, शीत–ऊष्ण, मान–अपमान, शत्रु–मित्र, ज्ञान–अज्ञान के द्वन्द्वों के द्वारा बने माया जाल में फंसा है। इस जाल से मुक्ति पाने के लिए भगवान कृष्ण ने तीन प्रकार के तपों का वर्णन किया है। प्रथम तप है शारीरिक तपः।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शरीरं तपः उच्यते।।

अर्थात् ब्रह्मा–विष्णु–शिवादि देवताओं, ब्राह्मणधर्म का पालन करने वाले ब्राह्मणों, तत्वज्ञानियों तथा श्री गुरुदेव की पूजा एवं आराधना, वाह्यशुद्धि तथा अन्तःकरण की आन्तरिक शुद्धि, व्यवहार में निष्कपटता एवं सरलता, ब्रह्मचर्यवृत का पूर्णरूपेण पालन तथा किसी भी अन्य जीव को अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए पीड़ा न देना शरीर द्वारा किया गया तप है।

दूसरा तप वाणी द्वारा किया जाता है जिसको परमात्मा ने अपने मुखारविन्द से इस प्रकार बताया है कि–

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यासं च वांगमयं तप उच्यते।।

अर्थात् अपनी वाणी से कभी कोई ऐसा वाक्य न निकले जो सुनने वाले को पीड़ा देने वाला हो। सदैव सत्य का पालन करे और वह मधु सत्य हो यानि सत्य का पालन भी किसी अन्य के लिए दुःखदायी न हो। सदैव वाणी से मोक्ष सम्पादक शास्त्रों का अध्ययन, मनन तथा निदिध्यासन एवं मोक्षमायी मन्त्रों का जपादि का निरन्तर श्रद्धापूर्वक अभ्यास करते रहना वाणी का तप है। तीसरा तप मानसिक तप है जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वह है कि–

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिः इत्येतद् तपो मानसमुच्यते।

अर्थात् मन की प्रसन्नता यानि हर्ष–विषाद तथा भय से सदा मुक्त मन, व्यवहार में सर्वांगीण मधुरता मौनवृत का पालन, इन्द्रियों पर पूर्ण संयम यानि इन्द्रियों का अपने–अपने विषयों से सहज वैराग्य और मन की एकाग्रता से अन्तःकरण की शुद्धि करना, यह सब मानसिक तप है। परमात्मा की प्रसन्नता के लिए तप का बहुत महत्व है। इससे लौकिक तथा पारलौकिक दोनों लक्ष्य सिद्ध हो जाते हैं। दूसरा साधन स्वाध्याय है। इसका शाब्दिक अर्थ तो अपने स्वरूप का चिन्तन है। परमात्मा ही

अपना सत्यस्वरूप है। अतः एकाग्रभाव से परमात्मचिन्तन ही स्वाध्याय है। इसके प्रमुखतः दो आधार है। प्रथम परमात्मवाचक महामन्त्रों का जप और दूसरा परमात्मा के स्वरूप की विवेचना करने वाले शास्त्रों का अध्ययन। मेरे गुरुदेव महाराज ने मन्त्रजप का विशेष महत्व बताया था कि जीवात्मा के कल्याण के लिए मन्त्रजप में तीन अद्भुत शक्तियाँ कार्य करती हैं। पहली शक्ति तो सत्यगुरुदेव की अमोघ शक्ति रहती है जो कि दीक्षा के समय ही गुरुमन्त्र में प्रवेश कर जाती है और सदैव मातृवत अपने बच्चों की रक्षा करती है, सभी विघ्नबाधाओं को हटाती है, उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती है। दूसरी शक्ति इष्टदेव की शक्ति होती है जिसका मन्त्र वाचक है। जैसे–जैसे मन की एकाग्रता बढ़ती जाती है वैसे–वैसे इष्टदेव का योगैश्वर्य जप करने वाले के शरीर में प्रवेश करता जाता है। तीसरी शक्ति उन सिद्धपुरुषों की होती है जो उस मन्त्र को जपकर सिद्ध बन गये हैं। वाराणसी में गंगा किनारे एकान्तवास करने वाले सूखा बाबा ने मुझे अपना अनुभव बताया था कि कभी–कभी आकाश में सिद्धपुरुषों के दर्शन होते हैं और उनका दिव्य आशीर्वाद तथा शक्ति पात का लाभ हो जाता है। अतः गुरुमन्त्र के निरन्तर जप करने से निश्चित रूप से समाधि की योग्यता अवश्य आयेगी, ऐसा विश्वास दृढ़ करना चाहिए।

क्रिया योग का तीसरा अंग है ईश्वर प्रणिधान। यह भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। भगवान कृष्ण ने एक रहस्योद्‌घाटन किया है–

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

अर्थात् ईश्वर सभी यज्ञों तथा तपस्याओं का भोक्ता है, समस्त प्राणिमात्र का आराध्यदेव है तथा परममित्र भी है। जो जीवात्मा इस ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं। उन्हें जन्ममृत्युजराव्याधि के दुःखों से मुक्ति एवं परम शान्ति की प्राप्ति हो जाती है। एक बात और ध्यान देने योग्य है कि–

यतः प्रकृतिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

अर्थात् जिस परमात्मा के सर्वव्यापक स्वरूप से यह प्राणिजगत प्रगट हुआ तथा जिसके संयोग से प्रकृति ने इस त्रिगुणात्मक जगत की रचना की है, उसी परमात्मा की अपने कर्मों द्वारा पूजा करके ही जीवात्मा परमशक्ति रूप मोक्ष को प्राप्त करता है। परमात्मा की यह योगमाया केवल अपने पुरुषार्थ से वशीभूत नही की जा सकती। इस माया पर वह लोग ही विजय पा सकते हैं जो मायाधीश की शरणागति पा जाते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अज्ञानान्धकार में फंसा जीव अनादिकाल से कर्माशय के अत्यन्त जटिल बन्धन में बन्धा हुआ है और यह बन्धन अपने अहंकार से नहीं काटा जा सकता क्योंकि दृष्टा तथा दृश्य की एकात्मता से ही अहंकार उत्पन्न हुआ है और अहंकार की जननी यह एकात्मता ही परमात्मा की योगमाया है। अतः यह बन्धन केवल परमात्मा या

परमात्मा की ही विशुद्ध सत्ता सत्गुरुदेव की कृपा से ही काटा जा सकता है। इसीलिए भगवान कृष्ण ने संकेत दिया है कि–

सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यः मोचस्यमि मा शुचः।।

अर्थात् हे अर्जुन तू अपने कर्माशय के कर्मबन्धन रूपी पापों को लेकर चिन्तित न हो। अपने समस्त धर्मों तथा कर्तव्यों का त्याग कर मेरी शरणगति में आ जा, मैं तेरे सभी पाप जनित कर्मबन्धों को काट दूँगा।

मैंने संक्षेप में क्रियायोग को समझाने का प्रयास किया है। गणित के एक साधारण सूत्र $S=k/w$, जहाँ S = spirituality (परमात्मप्राप्ति), W=Worldly desires ([illegible] वासनायें) तथा k= क्रियायोग। इस सूत्र से अनुमान लगाया जा सकता है, क्योंकि जब तक सांसारिक वासनायें चित्त में रहेंगी तब तक परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती है। क्रियायोग के द्वारा जैसे–जैसे यह वासनायें क्षीण होती जायेंगी, वैसे–वैसे जीवात्मा परमात्मा के सान्निध्य में पहुँचता जायेगा और जिस क्षण क्रियायोग की सिद्धि हो जाने पर समस्त वासनायें क्षय हो जायेगी, उसी क्षण जीवभाव का अन्धकार परमात्मभाव के प्रकाश में विलीन हो जायेगा, यानि $W \to 0 \Rightarrow S \to \infty$.

***

श्रीगुरु चरणों में.......

–राजेश कुमार सिंह (बलिया)

ऐ योगी सिद्धगुफा के तेरी महिमा अपरम्पार,
तुम जग के पालनहार, गुरुदेव आ जाओ एकबार।
सब नाते-रिश्ते तुमसे हैं, बस तुम ही हो जग के त्राता,
तुमको छोड़ जाऊँ कहाँ मैं तुम हो सबके भाग्य विधाता।
कृपा करके ऐ त्रिपुरारी, सुधा प्यार की बाँटो,
योग की वर्षा करने वाले, बंधन भव का काटो।
सिद्ध गुफा के मन्दिर की वो दिव्य ज्योति जलाओ,
कमल मन का खाली है आ, आसन आप लगाओ।

श्रीमद्भगवत में ध्यान-विधि

आचार्य बलरामजी शास्त्री

भक्त को भगवान् के सान्निध्य में पहुँचने या भगवान को प्राप्त करने के लिये जो उपाय बतलाये गये हैं, उनमें 'ध्यान–विधि' सर्वोपरि है। श्री मद्भागवत महापुराण में चार स्थलों पर ध्यान–विधि का वर्णन है। श्री मद्भगवत महापुराण भक्ति–पक्ष का सर्वोपरि ग्रन्थ है। अनेकानेक धर्मों में 'ईश्वर' की आराधना के विविध प्रकार हैं। 'सनातनी' हिन्दू जनता अपने अभीष्ट देवों की षोडशोपचार–विधि से पूजा करती है, अर्चना करती है, जो मूर्तिपूजा–परम्परा का एक वैज्ञानिक आधार है। साधारण—— या अबोध बालक निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, परब्रह्म परमात्मा का ध्यान सरलता से नहीं कर सकते। असमंजस में पड़ जाते हैं, पड़ सकते हैं। उनका सरल हृदय, अविकसित विचार, निर्गुण ब्रह्म को समझने में असमर्थ हो जाता है। मूर्ति–पूजा सर्वसाधारण को भगवान् या अभीष्ट देव की रूपरेखा समझाने में सरल मार्ग बन जाती है। लक्ष्य तक पहुँचाने की वह सीधी पगडंडी है। घोर अन्धकार में ढूँढ़ने के लिये टिमटिमाता प्रकाश है। इसी पद्धति से मीरा ने अपने साँवरिया को पाया। सूरदास जी ने बाल–कृष्ण को अपनाया। सन्त तुलसीदास जी ने धनुष–बाण लिये श्रीराम का दर्शन किया।

मूर्ति–पूजा में भी 'साधना' की अपेक्षा होती है। 'तन्मयता' का आधार लेकर बढ़ना होता है। यदि तन्मयता नहीं तो कुछ हाथ नहीं लग सकता। दुष्ट और चंचल मन यहाँ भी तर्कों और कुतर्कों में फँसता उलझता चला जाता है। मूर्ति–पूजा करते समय यह मन पुत्र, पौत्र, कलत्र में ध्यान लगा देता है। मन स्थिर हो नहीं पाता। मन को वायु के वेग के समान चंचल कहा गया है। यह सब होते हुए भी साधक पूजन, अर्चन–विधि को अपनाकर चलता रहता है। एक जन्म में न सही, अनेक जन्मों में ही सही, कभी तो गन्तव्य स्थान मिल ही जायेगा।

'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।'

महर्षि व्यास जी ने पूजन तथा अर्चन–विधि को कर्मकाण्ड ही माना है। ध्यान–विधि का सहारा लेकर भक्त अपने भगवान् को पाने में निश्चित सफलता प्राप्त कर सकता है। यद्यपि मन तो यहाँ भी बाधक बनता है, किन्तु चंचल मन को वश में करने के लिये उपाय बतलाये गये हैं।

ध्यान-विधि

ध्यान–विधि में अधिक आडम्बर की आवश्यकता नहीं है। शुद्ध वस्त्र पहनकर समतल आसन पर बैठ जाइये। कुशासन या कम्बलासन पर बैठकर 'पद्मासन' लगा लें। अपनी दोनों हथेलियाँ गोदी में रखें या घुटनों पर। बिल्कुल सीधे बैठना चाहिये। दक्षिण दिशा को छोड़कर किसी भी दिशा में मुख करके बैठना ठीक है। यदि सूर्यदेव की ओर मुख करके बैठिये तो अति उत्तम है। नेत्रों को अर्द्धनिमीलित करें। अर्थात् आधा मूँद लें। दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर जमा दें। पहले यही अभ्यास करें। चंचल मन को नियन्त्रण में रखने के लिये 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र का जप करते रहना चाहिये। कुछ ही दिनों के अभ्यास से नासिका के अग्रभाग में दृष्टि जमने लगेगी। अब क्रमशः परब्रह्म परमात्मा के सगुणरूप–भगवान् विष्णु के चतुर्भुज रूप का ध्यान करने के लिये 'धारणा' का सहारा लीजिये। धारणा का सहारा ही सिद्धि दिलाता है। विष्णुभगवान् के चरण कमल का ध्यान करने के पूर्व उन चरणों का कमल के अष्टदल पर ध्यान कीजिये–भगवान् के तलवे कमल के पुष्प के समान लाल रंग के हैं। ऊपर के भाग तीसी के

फूल या नील कमल के समान नील वर्ण के हैं। उनका सारा शरीर ही नीले कमल के समान है। चरणों के बाद क्रमशः घुटने, कटि, वक्षःस्थल, गर्दन और अन्त में प्रसन्न वदन अर्थात् मुस्कराते हुए मुख–कमल का ध्यान करें। मस्तक के ऊपर अनेकों रत्नों से जटित मुकुट, पैरों में पैजनी, कमर में करधनी, बाहों में बिजायठ, वक्षः स्थल के मध्य में कौस्तुभमणि, सारे शरीर पर पीला रेशमी वस्त्र और चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा एवं पद्म हैं।

आजकल के चित्रकार भगवान विष्णु के कई प्रकार के चित्र बनाते हैं, पर श्रीमद्भगवत पुराण में कमल के ऊपर ही भगवान को विराजमान बताया गया है। ध्यान का नित्य अभ्यास कीजिये। दिन में प्रातःकाल, दोपहर और सायंकाल–तीन बार अभ्यास करना चाहिये। शनैः शनैः सफलता मिलने लगेगी। श्रीमद्भागवत में चार स्थलों पर ध्यान की विधि समझाने का जो प्रयास किया गया है, उससे यह स्पष्ट है कि विधि–पूर्वक ध्यान करने से भगवान् को समझा और पाया जा सकता है।

श्रीमद्भगवत के द्वितीय सकन्ध में लिखा है कि भगवान् के चारों हाथों में क्रमशः–शंख, चक्र, गदा और कमल है। उनके मुखमण्डल पर प्रसन्नता बिराजमान है। मन्द–मन्द मुस्कराते हुए वे अपने भक्त के ऊपर आनन्द की वर्षा कर रहे हैं। उनके नेत्र कमल के समान रतनारे हैं। कदम्ब के फूल के समान पीला पीताम्बर है। भुजाओं में अनेकों रत्नों से जटित बिजायठ है। सिर पर अति सुन्दर मुकुट है। कानों में कुण्डल लटक रहे हैं। भगवान के दोनों चरण कमल की विकसित कर्णिका पर विराजमान हैं। कण्ठ में कौस्तुभमणि और हृदय में श्रीवत्स–चिन्ह हैं। वक्ष स्थल पर कभी न कुम्हलाने वाली वनमाला है। कमर में सुन्दर करधनी और अंगुलियों में जड़ाऊ अंगूठियाँ हैं। हाथों में कंगन और चरणों में नुपूर हैं। सिर के बालों की सुन्दर घुंघराली लटें लटक रही हैं। मुखकमल मन्द–मन्द मुस्कान से खिल रहा है। इस प्रकार वे प्रभु अपने उन्मुक्त हास और अनोखी चितवन से अपने भक्तजनों के ऊपर अनुग्रह की वर्षा कर रहे हैं।

इस प्रकार की धारणा द्वारा भगवान् के ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। महर्षि व्यासजी ने स्पष्ट कर दिया कि भगवान के रुप का ध्यान पहले चरण कमलों से क्रमशः प्रारम्भ करके सिर तक का करना चाहिये।

महर्षि कपिलजी ने भी अपनी माता देवहूतिजी को भगवान के ध्यान की विधि समझायी है। यह प्रसंग तीसरे स्कन्ध में है। भगवान् का मुख–मण्डल आनन्द से प्रफुल्लित है। दोनों नेत्र कमल–कोश के समान रतनारे हैं। शरीर का रंग नीला कमलदल के समान है। (अलसी के पुष्प के समान भी कहा जाता है।) चारों हाथों में भगवान् क्रमशः शंख, चक्र, गदा और कमल धारण किये हुए हैं। शरीर पर कमल के पीले केसर के समान रेशमी वस्त्र है। जो घुटनों के नीचे तक लटक रहा है। वक्षः स्थल पर श्रीवत्स–चिन्ह है। गले की वनमाला चरणों तक लटक रही है। वनमाला के चारों ओर पुष्पों की सुगन्ध पान करने के लिये भौंरे गुन–गुना रहे हैं। भगवान के चरण कमल विराजमान हैं। भगवान् का दर्शनीय सलोना श्यामसुन्दर मुख अति शान्त और मनोहारी है। बड़ी मनोहर झाँकी है। वे अपने भक्तजनों पर कृपा करने के लिये आतुर हो रहे हैं।

बालक ध्रुव को नारदजी का उपदेश

श्रीमद्भगवत के चतुर्थ स्कन्ध में महर्षि नारदजी ने बालक ध्रुव को उस समय भगवान के ध्यान की विधि समझायी, जब उन्होंने देखा कि क्षत्रिय–बालक भगवान से मिलने के लिये कटिबद्ध है। सौतेली माता के व्यंग्य–बाण से मर्माहत है

नारदजी ने बालक ध्रुव के दृढ़ निश्चय को जानकर भगवान् के ध्यान की विधि समझाकर भगवान् के साक्षात्कार सहित, ध्रुव के अमर–पद के लिये उनका पथ–प्रशस्त कर दिया।

नारदजी ने बताया– 'बेटा ध्रुव ! भगवान् के नेत्र और उनका मुखकमल सर्वदा प्रसन्न रहता है। भगवान् की मुखाकृति से ही अवगत होता है कि वे अपने भक्तों को वर देने के लिये उद्यत हैं। भगवान् के कपोल, नासिका आदि अति मनोहर हैं, मनोरम हैं। उनके सभी अंग–उपांग अपनी–अपनी निराली छटा बिखेर रहे हैं और तरुण–अवस्था के द्योतक हैं, सुन्दर एवं सुडौल हैं। दोनों नेत्र कमल के पुष्प के समान लाल–लाल हैं। ओंठ भी लाल हैं। भगवान के वक्षः स्थल पर 'श्रीवत्स' का स्पष्ट चिन्ह है। उनका शरीर सजल जलद के समान श्यामल है। या अलसी के पुष्प के समान नीला है। समस्त अंगों से विचित्र आभा झलक रही है। गले में वनमाला है और चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और कमल विराजमान हैं। सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, बाहों में केयूर, पाँवों में नुपूर सुशोभित हैं। पूरे शरीर पर पीला रेशमी वस्त्र फहरा रहा है। कटि में रत्नों से जड़ी करधनी चमक रही है। भगवान का दर्शनीय रूप सर्वदा आनन्द की वर्षा करता रहता है।' इस प्रकार भगवान् के रूप का वर्णन करके नारदजी ने बालक ध्रुव को धारणा का सहारा देकर आगे समझाया–'बेटा ध्रुव ! उपरोक्त विधि से भगवान् की रूप–माधुरी का ध्यान करने के लिये 'धारणा' का सहारा लेने के लिये चित्त को एकाग्र करना पड़ता है। यह कामना करनी चाहिये– 'मेरे प्रभु ! मेरी ओर अनुराग भरी दृष्टि निहार रहे हैं और मुझे वर देने के लिये उत्सुक हैं। इस प्रकार का ध्यान करने से मन एकाग्र हो जाता है। चित्त की चंचलता भी प्रभु की कृपा से समाप्त हो जाती है। मन परमानन्द में मग्न हो जाता है, तल्लीन हो जाता है। तल्लीनता के कारण वह भगवान् के रूप के ध्यान से हटता ही नहीं। नारदजी ने बालक ध्रुव को भगवान् के ध्यान की विधि समझाकर उनके मानस–पूजन की विधि भी समझायी। नारदजी द्वारा समझायी गयी विधि से बालक ध्रुव ने भगवान् को प्राप्त कर लिया और वह अमरपद भी पाया जो आजतक किसी अन्य को नहीं मिला।

श्रीमद्भगवत के एकादश स्कन्ध में स्वयं भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने अपने परम प्रिय भक्त उद्धवजी को भगवान् के ध्यान की विधि समझायी है। उद्धवजी बहुत भाग्यवान् थे। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के परम प्रिय सखा और भक्त थे। एक बार भगवान् ने उद्धवजी को ब्रह्मा और शंकर जी से भी अपना प्रिय बतलाया– 'न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः'। ऐसे उन उद्धव को अपने ध्यान की विधि समझाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र ने कहा था–'प्रिय उद्धव ! मेरी माया से मोहित बुद्धि वाले विद्वज्जन अपने–अपने कर्म, संस्कार और अपनी–अपनी रुचि के अनुसार आत्मकल्याण के अनेकों साधन बतलाते हैं। पूर्व मीमांसक धर्म को, साहित्य के उपासक यश को, कामशास्त्री काम को तथा योगवेत्ता शमदमादि को आत्म–कल्याण का साधन मानते हैं। दण्ड नीतिकार ऐश्वर्य को, त्यागीजन त्याग को और लोकायतिक भोग को ही जीवन का परम लाभ (आत्म–कल्याण का साधन) मानते हैं। इसी प्रकार कर्मयोगीजन पुरुषार्थ को महत्व देते हैं। प्रिय उद्धव ! ये सभी कर्म नष्ट होने वाले हैं। कर्मों का फल समाप्त होने पर दुःख ही दुःख मिलता है।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उद्धवजी को आगे समझाते हुए कहा– प्रिय उद्धव ! जो सर्वप्रकार से संग्रह परिग्रह से रहित है, अकिञ्चन है, जो अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके शान्त और

समदर्शी हो गया है, जो मेरी प्राप्ति से मेरे सान्निध्य का अनुभव करके सदा–सर्वदा सन्तोष का अनुभव करता है, उसके लिये आकाश का एक–एक कोना 'आनन्द' से भरा हुआ है।'ध्यान की विधि समझाते हुए भगवान् ने उद्धवजी को बताया– 'प्रिय उद्धव ! मेरा ध्यान करने के लिये समतल भूमि पर आसन बिछाकर सीधा बैठ जाय। सीधा बैठकर अपने दोनों हाथों को अपनी गोद में या अपने दोनों घुटनों पर रख ले और अपनी दृष्टि नासिका के अग्रभाग में जमा ले। नेत्र अर्द्ध निमीलित कर ले, अर्थात् आधी आँखें मूँद ले। प्राणायाम द्वारा अपनी नाड़ियों का शोधन कर ठीक कर ले। जो प्राणायाम की विधि न जानता हो वह प्राणायाम करना किसी जानकार से सीख ले।' प्राणायाम में श्वास को चढ़ाने और क्रमशः उतारने की बिधि न जानने पर कभी–कभी धोखा हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने (पूर्व की तीनों ध्यान–विधियों से) यहाँ कुछ विस्तार से समझाते हुए उद्धव को सावधान किया है। भगवान् ने आगे बताया– 'प्रिय उद्धव ! प्राणायाम के अभ्यास में 'ओंकार' के जप की भी आवश्यकता है। प्रतिदिन प्रातः, दोपहर और सायंकाल–तीन बार सन्ध्या–विधि के समान ध्यान का अभ्यास करना चाहिये।'

भगवान् ने स्पष्ट कहा है– 'एक मास में इस प्रकार के अभ्यास से 'प्राणवायु' वश में हो जाती है। प्राणवायु को वश में करके मन को नियन्त्रित करने के लिये निम्न 'धारणा' का सहारा ले। (इसी धारणा से भगवान् का ध्यान सफल हो जायेगा)। ऐसा चिन्तन करे– हृदय एक कमल है। वह शरीर के भीतर इस प्रकार स्थित है कि उसका मुख नीचे की ओर और नाल ऊपर है। वह कमल नीचे से ऊपर की ओर धीरे–धीरे उठता है और पूर्णरूप से विकसित हो जाता है। उसकी पंखुड़ियाँ चारों ओर खिल जाती हैं। उसके ऊपर पीली कर्णिकापुर मुझ भगवान् के दोनों चरण विराजमान करे। चरणों के तलवे लाल–लाल कमलदल के समान हैं। उनसे आभा निकल रही है। चरणों के ऊपरी भाग का रंग नीले कमल के समान है। या अलसी के पुष्प के समान नीलाभ है।' भगवान् श्रीकृष्ण ने आगे समझाया– 'मेरा यह रूप ध्यान के लिये अति मंगलमय है। मेरे रोम–रोम से शान्ति टपकती है। मुखमण्डल अति प्रफुल्लित और अति मनोरम है। सर्वदा प्रसन्नता की छटा बिखरती रहती है। चरणों के ऊपर घुटनों तक लम्बी भुजाएँ हैं। पूरे शरीर पर पीताम्बर फहराता रहता है। वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह है। बहुत सुन्दर मनोहर ग्रीवा है। मरकतमणि के समान स्निग्ध कपोल है। मुखमण्डल पर अनोखी मन्द–मन्द मुस्कान की छटा विराजमान है। दोनों कान मकराकृत कुण्डलों से शोभा पा रहे हैं। चारों हाथों में क्रमशः शंख चक्र, गदा और कमल शोभायमान हो रहे हैं। गले में वनमाला लटक रही है। चरणों में नूपुरों की शोभा है। वक्षःस्थल में कौस्तुभमणि और कमर में करधनी, बाहों में भुजबन्ध चमकते हैं। मेरा अंग प्रत्यंग अति मनोहारी है। मेरे सभी अंगों से आनन्द की वर्षा होती रहती है। ऐसे मेरे स्वरूप का ध्यान करना चाहिये।' भगवान् श्रीकृष्ण ने आगे समझाया– 'प्रिय उद्धव ! मन के द्वारा समस्त इन्द्रियों के विषयों को खींच ले। मन को बुद्धिरूप 'सारथी' की सहायता से मेरे में लगा दे। मन यदि मेरे किसी अंगपर जम जाय तो उसे जमा रहने दे। शनैःशनैः मन को अन्यान्य अंगों पर से हटाकर मेरे मुखमण्डल पर स्थिर कर दे। जब मेरे मुख मण्डल पर ध्यान जम जाय तो शनैः शनैः मेरे स्वरूप को उस कमल की कर्णिका पर से हटाकर आकाश में स्थित करे। मेरे अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु का चिन्तन न करे। इस प्रकार चित्त से वस्तु की अनेकता और तत्सम्बन्धी ज्ञान तथा उनकी प्राप्ति के लिये होने वाले कर्मों का भ्रम शीघ्र ही दूर हो जाता है। ***

प्रभु चन्द्रमोहन अष्टक

श्री मद गुरुणां पद पदमध्यानं समस्त देवार्चन वन्दनाद्वरम्।
वाचस्तु सेवां सकलार्थ पूरकाः पुनान्तु माँ गुरुपाद पांसवः।।१।।

अनन्त श्रीभिः समलंकृतोयो योगाग्निना तप्त सुवर्ण देहः।
कारुण्यमूर्तिः करूणार्णवोयः पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसवः।।२।।

भक्ताय यः कल्पद्रुमस्तु साक्षात् यद्दर्शन पुण्यचयोर्द भवाय।
विभाति यस्यार्क निभंतु तेजः पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसवः।।३।।

करोतिध्वंसं सकलंतु कल्मषं गंगेव पापं हरते समग्रम।
शशीवे सौम्यः सुशीतलः पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसवः।।४।।

आगत्य भुवियः शिवरुप एवं, योगाय दीक्षामददज्जनेभ्यः।
भव तापतप्ताय परमौषधोयः पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसवः।।५।।

श्री रामलालस्य महाप्रभोर्वै कृपांशभूतोऽस्ति महान गुरुर्नः।
अस्मत्कृते सः परमेष्ट देवता, पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसवः।।६।।

अस्मद् गुरुणां महनीयवर्चसां वाणी गुणानां कथनेऽस्ति न क्षमा।
स एव ब्रह्मा विभुरस्ति शंकरः पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसवः।।७।।

योगीश्वर स परमेश्वरोनः अस्मत्कृते सः सर्वार्थ सिद्धि दः।
वसेत्सदा स मम नेत्रयोर्द्वयो, पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसवः।।८।।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER
BOOK-POST

श्री Jaya Karan Agrawal, Khoradia Bhawan, Lower Rajwan Road, JHARIA (Jh.K.) 828 111

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत् स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्।।

(श्रीमद्भागवत् ५/५/१८)

जो अपने प्रिय सम्बन्धी को भगवद् भक्ति का सदुपदेश देकर मृत्यु की फाँसी से उसे नही छुड़ा देता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है।

प्रकाशक एवं मुद्रक :— विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिंटिंग वार्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326
सम्पादक—आचार्य क्र० (डा.) रामलाल शर्मा